मूल्य एक रुपया

प्रकाशक : हिन्द पॉकिट बुक्स प्राइवेट लिमिटिड
जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली
मुद्रक : शिक्षा भारती प्रेस, शाहदरा, दिल्ली

DOCTOR KE ANE SE PAHALE : DR. LAKSHAMI-NARAIN SHARMA : FIRST AID

अनुक्रमणिका

पुस्तक का उद्देश्य

इस पुस्तक का उद्देश्य यह नहीं है कि आप अपना या अपने घरवालों का इलाज खुद करें। इलाज करना तो वस्तुतः कुशल चिकित्सक का ही काम है और इलाज हमेशा योग्य डाक्टर, वैद्य अथवा हकीम से ही कराना चाहिए। लेकिन अक्सर घर-गृहस्थ के जीवन में ऐसी घटनाएं हो जाती हैं कि जब तुरन्त ही डाक्टर की ज़रूरत पड़ जाती है। ऐसी हालत में अगर डाक्टर दूर हो अथवा अन्य किसी कारण से तत्काल ही डाक्टरी सहायता न मिल पाए तो आप क्या करें (?)

आकस्मिक घटनाओं के अतिरिक्त बहुत बार कई मर्ज़ अचानक पैदा हो जाते हैं और तुरन्त डाक्टर की ज़रूरत महसूस की जाती है। डाक्टर के आने तक आप रोगी को किस तरह संभालें, इस बात का सही ज्ञान होना भी ज़रूरी है

इसके अतिरिक्त आज का युग ज्ञान-विज्ञान का युग है। सुखी जीवन के लिए ज्ञान ज़रूरी होता जा रहा है और फिर ये तो आपके शरीर से सम्बन्ध रखनेवाली बातें हैं। इस पुस्तक का एक विशेष उद्देश्य यह भी है कि आपके शरीर में होनेवाले रोगों का एक आभास या उनकी रूपरेखा आपको समझाई जा सके, ताकि आप रोग की गंभीरता या उसके हलकेपन का अन्दाज़ लगा सकें। बहुत बार ऐसा होता है कि किसी रोग के लक्षण को हम मामूली-सी शिकायत समझकर उसकी उपेक्षा कर जाते हैं और कुछ ही घण्टों में वह रोग बढ़कर काबू के बाहर हो जाता है। दूसरी तरफ मामूली रोगों से इतने अधीर हो जाते हैं कि अपने होश-हवास ही खो बैठते हैं।

दरअसल बात यह है कि हम गम्भीर लक्षणों से रोग की गम्भीरता का अनुमान लगाते हैं। तेज़ सिरदर्द, तेज़ बुखार अथवा बढ़ी हुई बेचैनी, परेशानी या बेहोशी को ही गम्भीर लक्षण समझते हैं, जबकि अनेक

बार ये लक्षण घातक नहीं होते। इस कथन से हमारा यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि रोगी के इलाज में कोई लापरवाही बरती जाए, अथवा डाक्टरी सहायता की उपेक्षा की जाए, वरन हमारा मतलब यह है कि जनसाधारण को यदि रोगों के सम्बन्ध में सामान्य ज्ञान हो, तो वे और अधिक एहतियात से रोगी का इलाज करा सकते हैं; कई अनावश्यक परेशानियों से भी बच सकते हैं और डाक्टर के सामने एक अच्छे मरीज़ साबित हो सकते हैं। उदाहरणार्थ, मलेरिया बुखार हमारे देश में आम तौर पर होनेवाला रोग है। भारत में तो शायद ही ऐसा कोई व्यक्ति हो जिसे मलेरिया ज्वर ने न सताया हो। लेकिन यह घातक नहीं होता।[1] अलबत्ता इसमें रोगी को बेचैनी, परेशानी, तेज़ बुखार हो जाने पर बेहोशी, बकवास आदि सभी कुछ होता है। बहुत-से नाज़ुक मिज़ाज के लोग तो १०१° बुखार होने पर ही बड़ी हायतोबा मचा देते हैं। लेकिन अगर आप यह जानते हैं कि यह मलेरिया बुखार है और एक-दो दिन में ही ठीक हो जाएगा, तो फिर आप चाहे स्वयं इसके शिकार हुए हों या आपके घर में और कोई मलेरिया का रोगी हो, आप होश-हवास नहीं खोएंगे, तसल्ली और शान्ति से रोगी का उपचार कराके उसे ठीक कर लेंगे।

आप गम्भीर रोगों की उपेक्षा न करें, हिस्टीरिया और मलेरिया जैसे रोगों में घबराएं नहीं और घर में कोई आकस्मिक घटना, जैसे आग से जल जाना, छत से गिर पड़ना और बिच्छू का डंक मार देना इत्यादि अवसरों पर डाक्टरी सहायता मिलने के पूर्व उचित एहतियात कर सकें, यही इस पुस्तक का उद्देश्य है।

स्वास्थ्य-विहार
पो०—निवाड़ी
ज़िला मेरठ

—डा० लक्ष्मीनारायण शर्मा

---

१. कुछ विशेष परिस्थितियों में काफी पुराना पड़ जाने पर जब जिगर और तिल्ली बहुत बढ़ जाते हैं और रोगी के इलाज की उचित व्यवस्था नहीं होती, तभी रोगी मरता है। मलेरिया रिपोर्ट के अनुसार गांव के गरीब देहाती ही धनाभाव के कारण इलाज के अभाव में मरते हैं।

कुछ प्रारंभिक बातें

इलाज या आकस्मिक घटनाओं के सिलसिले में कुछ आम बातें ऐसी होती हैं कि जिन्हें जानते हुए भी लोग उनकी उपेक्षा कर जाते हैं और इस उपेक्षा का नतीजा अच्छा नहीं निकलता। हम अपने अनुभव की कुछ बातें लिखकर पाठकों को उन बातों के प्रति जागरूक रहने की सलाह देंगे।

(१) घबराइए मत—कोई भी आकस्मिक घटना हो जाने पर—जैसे कोई बच्चा छत से नीचे गिर पड़ा है अथवा कोई आग से जल गया है—घबराना नहीं चाहिए। क्योंकि घबराहट की दशा में हमारी बुद्धि सोचने-विचारने का काम नहीं करती और अधिकांश रूप में या तो हम 'किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं अथवा कोई गलत कदम उठा बैठते हैं। और अपनी इस गलती पर बाद में अफसोस करना और पछताना पड़ता है। ऐसे मौकों पर भाग्यवादी बन जाना चाहिए। भाग्य पर विश्वास कर बैठना जीवन में दूसरे मौकों पर चाहे उपयुक्त न हो, पर ऐसे अवसरों पर अच्छा रहता है। 'अब होगा तो वही जो भाग्य में लिखा है' ऐसा समझ लेने पर एक निश्चिन्तता आपके मन में ज़रूर आ जाएगी और आप घबराहट के चंगुल से बच जाएंगे। फिर इस बात की संभावना नहीं रहती कि आप कोई गलत काम कर गुज़रेंगे।

ऐसी घटनाएं हो चुकी हैं कि घबराहट में लोगों ने अपने मरीज़ को दवा की जगह मालिश का तेल पिला दिया और उस ज़हरीले तेल से रोगी मर गया।

(२) दूसरों की सलाह—कहा नहीं जा सकता कि दूसरे देशों के लोगों में भी यह प्रवृत्ति है या नहीं; लेकिन हमारे देश में तो यह आदत प्रायः सौ फीसदी लोगों में पाई जाती है कि यदि आप किसी

भी रोग से पीड़ित हैं तो आपका हर मिलनेवाला, दोस्त, पड़ोसी आपको उस मर्ज़ का एक न एक नुस्खा बता देगा और साथ ही वह दावा करेगा कि यह नुस्खा उसका आज़मूदा है, किसी बड़े डाक्टर ने उसे बताया है। कोई अपने नुस्खे को किसी पुराने वैद्य का योग बताएगा और कोई फकीरी चुटकुला कहेगा। कहना न होगा कि यह सब इन लोगों की अनधिकार चेष्टा होती है। मर्ज़ और दवा की बारीकियों के बारे में ऐसे लोग कुछ नहीं जानते। अच्छे पढ़े-लिखे लोगों में इन बातों को मानने और मनवाने की प्रवृत्ति भले ही कुछ कम हो, लेकिन अर्धशिक्षित और बेपढ़े लोग इन बातों को तरजीह देते हैं। वे ऐसे चुटकुलों को धन्वन्तरि का योग मानकर उससे चमत्कार की आशा रखते हैं। लेकिन इस प्रवृत्ति से नब्बे फीसदी लोग नुकसान उठाते पाए जाते हैं।

एक बार मैं एक ऐसे रोगी को देखने गया जिसके जंघासों में आम के बराबर बड़े-बड़े फफोले पड़े हुए थे और रोगी पीड़ा से छट-पटा रहा था। पूछताछ करने पर मालूम हुआ कि उसे कई वर्ष से दाद तंग कर रहे थे; किसी दवा से कोई लाभ न हुआ था। किसी मित्र के सुझाव पर दादों पर उसने तेज़ाब लगा लिया था। नतीजा यह हुआ कि बेचारा एक मास तक चारपाई पर पड़ा रहा।

दूसरे एक व्यक्ति ने किसी ऐसे ही धन्वन्तरि की सलाह से अपनी दुखती हुई दाढ़ में आक (मदार) का दूध भर लिया—आक का दूध कितना दाहक होता है इसका शायद दोनों में से किसीको पता न था—फलतः बारह घण्टे के अन्दर उसका चेहरा सूजकर तोमड़ा हो गया और वह असह्य पीड़ा से सिर को पटकने लगा। उसी समय उसे अस्पताल भेजा गया जहां पर वह दो महीने में ठीक हुआ; कान में मवाद पड़ गया, आधे चेहरे की खाल उपड़ गई और आंख फूटते-फूटते बची।

घबराहट और नुस्खेबाज़ी की एक और घटना का उल्लेख करना मैं यहां उपयुक्त समझूंगा। मेरे दवाखाने से लगभग तीन मील दूर एक गांव में एक बच्चा छत से गिर गया था। मैं घटना के लगभग दो घण्टे बाद वहां पहुंच सका। बच्चे की अवस्था आठ-दस वर्ष की

थी और उसका सिर फट गया था। मेरे पहुंचने के पूर्व उसके न मालूम कितने इलाज किए जा चुके थे लेकिन घाव से खून उस समय भी निकल रहा था। पहले उसके रेशम जलाकर भरा गया, फिर किसीने कहा कि नहीं, स्प्रिट लगाओ, तो घाव पर स्प्रिट उंडेल दी गई; उसके बाद किसी साहब का सुझाव आया कि मुल्तानी मिट्टी पानी में घोलकर लेप करो—उनकी आज्ञा का भी पालन किया गया और मुल्तानी मिट्टी लगा दी गई। और इन इलाजों का नतीजा यह निकला कि ज़ख्म को साफ करने में ही एक घण्टा लग गया और उस बेचारे बच्चे को जो तकलीफ हुई होगी उसका अंदाज़ नहीं लगाया जा सकता। इन इलाजों से ज़ख्म इस हालत में नहीं रहा कि उसमें टांके भरे जा सकें। फलतः उस बच्चे की खोपड़ी पर ज़ख्म भरने पर भी एक बेहूदा निशान रह गया।

आग से जलने की तो अक्सर ऐसी घटनाएं होती हैं जिसमें लोग डाक्टरी इलाज ही कराना पसन्द नहीं करते; मोर का पंख बांध देना, कौड़ी फूंककर भरवा देना अथवा नीम और पीपल की छाल कूटकर लगाना तथा अन्य ऐसे ही टोटकों से जले हुए रोगी को अच्छा करना चाहते हैं। लेकिन जब इन टोटकों से कोई लाभ नहीं होता तो लोग सड़े-गले ज़ख्म लेकर अस्पताल को दौड़ते हैं या फिर डाक्टर का दरवाज़ा खटखटाते हैं।

अतः इस नुस्खा बताने की प्रवृत्ति को कभी बढ़ावा नहीं देना चाहिए। सच तो यह है कि आपको इस बात का अहद कर लेना चाहिए कि ऐसे नुस्खों और टोटकों पर कभी अमल नहीं करेंगे और साथ ही यह भी, कि आप स्वयं भी किसीको कोई नुस्खा बताने की गलती नहीं करेंगे। वस्तुतः इलाज का काम मर्ज़ और दवा की बारीकियों को समझनेवाले सुशिक्षित चिकित्सक का ही होता है।

इस सिलसिले में हमें एक महत्त्वपूर्ण बात और कहनी है कि जब कहीं कोई आकस्मिक घटना हो जाती है तो गली-मुहल्ले के सैकड़ों स्त्री-पुरुष उधर दौड़ पड़ते हैं। इनमें सहानुभूतिवश जानेवालों की संख्या तो बहुत कम होती है; ज्यादातर लोग तमाशा देखने के ख्याल से पहुंच जाते हैं। जिस बेचारे के परिवार में दुर्घटना हो गई है उसके

लिए यह अनावश्यक भीड़ एक समस्या बन जाती है । इससे रोगी की देखभाल और सेवा-सुश्रूषा में भी बाधा पड़ती है। लेकिन इस कथन से हमारा यह मतलब नहीं है कि आप पीड़ित परिवार की मदद के लिए भी न जाएं ; जाना जरूर चाहिए। वहां जाकर आप यह देखिए कि आप उसकी क्या मदद कर सकते हैं। यथासम्भव उसकी सहायता कीजिए। लेकिन यदि वहां आपकी सहायता की कोई आवश्यकता नहीं है तो फिर आपका वहां से वापस चले आना ही रोगी और उसके परिवारवालों के लिए ज्यादा हितकर रहेगा।

(३) रोगी को आश्वस्त करें—परिवार में कोई दुर्घटना हो जाने पर अथवा रोगी की हालत अचानक खराब हो जाने की दशा में आपका यह पहला कर्तव्य है कि रोगी को धीरज बंधाएं, दिलासा दें, उसका साहस बढ़ाएं और उसे घबराने न दें। बहुत बार लोग ऐसे मौकों पर भावुकता में आकर रोगी के सामने ही रोने लगते हैं अथवा किसी दूसरे तरीके से अपनी कमज़ोरी ज़ाहिर करने लगते हैं। वस्तुतः ऐसे प्रदर्शन रोगी के मन पर बुरा असर डालते हैं। महिलाओं में खास तौर पर यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि वे अदबदाकर रोगी के सामने रोने लगती हैं। उससे कहती हैं—"तू तो बड़ा दुबला हो गया है !"—"तेरे शरीर पर तो मास ही नहीं रहा ; हड्डियां निकल आई हैं !"—"भैय्या, तेरी ज़िंदगी का तो भगवान ही मालिक है !" कहना न होगा कि ये बातें रोगी के दिल को छोटा कर देती हैं और उसमें एक मानसिक कमज़ोरी पैदा कर देती हैं। वह अपने जीवन के प्रति निराश होने लगता है; जबकि ऐसी हालत में भारी आशावाद, साहस, आत्मविश्वास और धैर्य की जरूरत होती है।

यहां हम इच्छाशक्ति के बल के विषय में ज़्यादा लिखने की ज़रूरत नहीं समझते। रोगी की दशा सुधारने में इच्छाशक्ति औषधियों से कहीं ज़्यादा काम करती है। अभी अखबारों में एक समाचार छपा था कि इटली में कई वर्ष का गठिया का एक पुराना रोगी अपनी प्रबल इच्छाशक्ति से एकदम उठकर सीधा खड़ा होकर चलने लगा और उसी क्षण वर्षों पुरानी बीमारी न जाने कहां गायब हो गई। समझदार डाक्टर भी हमेशा रोगी की इच्छाशक्ति को बलवती बनाने का प्रयत्न करते

हैं। रोगी को कभी निराश मत होने दीजिए। उसकी हिम्मत-अफ़ज़ाई करके उसमें आशा और आत्मविश्वास का संचार करना चाहिए।

(४) परिचर्या—रोगी की सेवा-सुश्रूषा में तत्परता का खास महत्त्व है। हमारे भारतीय घरों में रोगी की परिचर्या का भार किसी एक व्यक्ति पर तो रहता नहीं; जब-तब परिवार का कोई भी सदस्य परिचर्या में हाथ बंटाता रहता है। लेकिन अच्छा यही होता है कि परिचर्या का कार्य एक ही व्यक्ति के सुपुर्द किया जाए ताकि वह एकचित्त होकर अपना दायित्व निभा सके। परिचारक को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :

- डाक्टर की हिदायत के मुताबिक रोगी को समय पर दवा देनी चाहिए।
- डाक्टर की हिदायत के मुताबिक रोगी का पथ्य अपने सामने तैयार कराके खिलाना चाहिए।
- रोगी को पेशाब, पाखाना कराने तथा ऐसी ही दूसरी जरूरतों को पूरा करने में मुस्तैद रहना चाहिए।
- रोगी के आराम का पूरा ध्यान रखना चाहिए। रोगी के पास ज़्यादा मिलने-जुलनेवालों की भीड़ नहीं होने देनी चाहिए।
- जहां तक हो सके रोगी को प्रसन्न रखने की कोशिश करनी चाहिए और उससे अत्यन्त सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिए।

(५) निरीक्षण—परिचारक को सूक्ष्म निरीक्षक भी होना चाहिए ताकि वह इलाज में डाक्टर की मदद कर सके। इसके लिए उसे निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :

- थर्मामीटर से रोगी का ज्वर समय-समय पर नापकर नोट कर लेना चाहिए और वह डाक्टर को दिखाना चाहिए।
- पेशाब, पाखाना कितनी बार हुआ और कैसा हुआ यह भी नोट करके डाक्टर को बताना चाहिए। यदि डाक्टर रोगी का पाखाना देखना चाहता है तो उसे सुरक्षित रख देना चाहिए।
- रोगी को नींद कैसी आती है?
- किस करवट और किस हालत में रोगी आराम पाता है?
- यदि कहीं दर्द है तो पहले की अपेक्षा दर्द बढ़ा या घटा?

● रोगी की सामान्य दशा कैसी रही ?

● यदि अचानक रोगी की कोई तकलीफ बढ़ती है अथवा कोई खतरनाक लक्षण पैदा होता है तो तुरन्त डाक्टर को खबर देने की व्यवस्था करनी चाहिए।

● रोगी किस रोग से पीड़ित है और उसमें क्या-क्या सावधानियां अपेक्षित हैं ; इसका भी सामान्य ज्ञान परिचारक को होना चाहिए।

(६) सफाई—सफाई रखना रोगी की परिचर्या का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। सफाई की उपेक्षा रोगी के लिए घातक सिद्ध हो सकती है। क्योंकि गन्दगी में हज़ारों तरह के रोग-कीटाणु हो सकते हैं। उधर रोग भोगने के कारण बीमार की ताकत और रोग प्रति-रोधक-शक्ति बहुत कम हो जाती है। अतः गन्दगी के वातावरण में जल्दी ही कीटाणु रोगी के शरीर पर आक्रमण करने में कामयाब हो जाते हैं। ऐसी हालत में रोगी दूसरे नये रोगों का भी शिकार हो सकता है तथा उसकी मौजूदा बीमारी भी उग्र रूप धारण कर सकती है। सफाई के सिलसिले में निम्नलिखित बातें ध्यान में रखने योग्य हैं :

● रोगी के रहने का कमरा काफी हवादार हो। लेकिन रोगी की चारपाई इस तरह रखनी चाहिए कि उसे हवा के झोंके न लगें।

● रोगी के कमरे की सफाई प्रतिदिन करनी चाहिए। फर्श को गीले कपड़े से साफ करना चाहिए ताकि धूल न उड़े। जिस पानी में कपड़ा भिगोया जाए उसमें थोड़ा फिनाइल डाल देना चाहिए।

● रोगी के खाने-पीने के बर्तन साफ रखने के साथ-साथ घर के दूसरे बर्तनों से अलग रखने चाहिए।

● डाक्टर की हिदायत के मुताबिक रोगी को स्नान कराने या गीले तौलिये से उसका बदन पोंछने का काम तत्परता से करना चाहिए।

● रोगी के बिस्तर की चादर, तकिये के गिलाफ, तौलिया आदि रोज़ाना बदलने चाहिए।

● रोगी के पेशाब-पाखाने के बर्तन इस्तेमाल के बाद कमरे से बाहर रखने चाहिए और उनमें फिनाइल मिला पानी डाल देना चाहिए। थूकने के बर्तन में भी फिनाइल का पानी डालकर रखना चाहिए।

● हैज़ा, चेचक, बुखार जैसे संक्रामक रोगों के रोगी के कपड़े

रोगी के मरने या रोगमुक्त होने के बाद जला देने चाहिए। दूसरी वस्तुओं को पानी में उबालकर या डैटौल, पोटाशियम परमैंगनेट जैसी कीटाणु-नाशक ओषधियों के घोल में साफ करके और धूप में सुखाकर काम में लेना चाहिए।

● परिचारक को स्वयं भोजन करने से पहले अपने हाथ साबुन से अच्छी तरह से साफ करके फिर लायसोल या डैटौल के घोल में डुबोकर साफ कर लेने चाहिए।

● वायु-शुद्धि की दृष्टि से रोगी के कमरे में धूप या लोबान जलाना चाहिए।

आकस्मिक घटनाएं और उनकी तात्कालिक चिकित्सा

कोई भी आकस्मिक घटना हो जाने पर यदि किसी व्यक्ति को ज्यादा चोट आ जाए, तो उसे तुरन्त ही अस्पताल पहुंचाने अथवा नज़दीक के किसी डाक्टर के पास ले जाने की व्यवस्था करनी चाहिए। लेकिन यदि अस्पताल दूर हो और परिस्थितिवश रोगी जल्दी ही वहां न पहुंचाया जा सके, तथा नज़दीक और किसी डाक्टर के मिलने की भी व्यवस्था न हो तो रोगी की गम्भीर हालत पर फौरन ध्यान देकर उसकी कुछ न कुछ तात्कालिक चिकित्सा करनी ही चाहिए। डाक्टर के आने से पहले रोगी की किन अवस्थाओं में क्या चिकित्सा करनी चाहिए इस अध्याय में हम उसका वर्गीकरण दे रहे हैं।

रक्तस्राव (खून निकलना)

किसी भी प्रकार की आकस्मिक घटना होने पर खून निकल सकता है। यह रक्तस्राव तीन तरह का होता है—(१) धमनी कट जाने पर, (२) शिरा कट जाने पर, (३) छोटी-छोटी केशिकाएं कट जाने पर।

१. धमनियां शरीर में गहराई पर होती हैं। घाव गहरा होने पर जब कोई धमनी कट जाती है तो खून झटके के साथ उबल-उबलकर निकलता मालूम होता है। और चूंकि धमनियों में शुद्ध खून रहता है

अतः इसका रंग चमकीला लाल होता है।

२. शिराएं अशुद्ध खून ले जानेवाली नलिकाएं होती हैं और धमनियों की अपेक्षा शरीर के ऊपरी हिस्से में रहती हैं। जब कोई शिरा कट जाती है तो खून झटके के साथ न निकलकर लगातार एक-ही स्थान से बहता है और उसका रंग उतना चमकीला नहीं होता।

३. केशिकाएं खून की बहुत बारीक नलिकाएं होती हैं और इनके कटने पर खून पूरी सतह पर से रिसता हुआ मालूम देता है। मामूली रगड़ या ऊपरी चोटों में प्रायः केशिकाएं ही कटती हैं।

सावधानी—खून बहना देखकर आम तौर पर हम लोग घबरा जाते हैं और तुरन्त उसे बन्द कर देना चाहते हैं। इस घबराहट और जल्दबाज़ी में बहुत मर्तबा गलत काम कर बैठते हैं। गांवों में तो ऐसा देखा जाता है कि लोग धूल, मिट्टी तक भरकर घाव को बन्द करते हैं ताकि खून रुक जाए। दूसरे स्थानों पर कहीं रेशम या कम्बल जलाकर भर देते हैं। कहीं बूरा या चीनी भर दिया जाता है। इसी तरह और भी बहुत-सी अच्छी-बुरी चीजें इस्तेमाल की जाती हैं।

कहना न होगा कि ये सब उपाय कोई वैज्ञानिक उपाय नहीं हैं। यहां हम इस बात की चेतावनी दे देना ज़रूरी समझते हैं कि इस तरह के अवैज्ञानिक उपचार बहुत बार खतरनाक साबित होते हैं। घाव पर कोई भी चीज़ लगाने या भर देने पर बहुत अंशों में वह खून के साथ मिलकर सारे शरीर में प्रवेश कर जाती है। इंजेक्शन द्वारा भी दवा इसी तरह शरीर में पहुंचाई जाती है। ऐसी सूरत में धूल, मिट्टी या दूसरी इसी तरह की चीज़ों द्वारा अनेक रोगों के कीटाणु अनायास ही सीधे शरीर में पहुंच जाते हैं। कई बार ऐसे उपचारों के फलस्वरूप, टिटेनस और ज़हरवाद जैसे भयानक रोग हो जाते हैं और रोगी की जान पर आ बनती है।

दरअसल ऐसी हालत में घबराना नहीं चाहिए; खून निकल जाना शरीर के लिए घातक ज़रूर हो सकता है, लेकिन एक पिण्ट (लगभग १० छटांक) तक खून अगर शरीर से निकल भी जाए तो कोई खास नुक्सान नहीं होता। हां, इससे ज्यादा खून निकल जाने पर अवश्य ही रोगी निढाल हो सकता है, उसे ठण्डे पसीने भी आ सकते हैं;

नब्ज़ और दिल की हरकत बढ़ सकती है, खून का दबाव घट सकता है; उसे सांस लेने में कष्ट भी हो सकता है।

सही उपचार—ऐसी हालत में सबसे उत्तम और वैज्ञानिक उपचार पानी से होता है। पानी ऐसा चीज़ है जो सब जगह और सब समय मिल सकती है। फौरन घाव को पानी से धोकर घाव के मुताबिक छोटी या मोटी कपड़े की गद्दी ठण्डे पानी में भिगोकर घाव पर रखनी चाहिए और ऊपर से पट्टी बांध देनी चाहिए। घाववाले हिस्से को बराबर पानी से तर रखना चाहिए। यदि गर्मी के दिन हों और बर्फ़ नज़दीक ही आसानी से मिल सके तो यह सारी क्रिया बर्फ के पानी से करनी चाहिए और यदि सम्भव हो सके तो पट्टी के ऊपर भी बर्फ की डली रख देनी चाहिए। शिरा या धमनी के कटने पर जल्दी ही खून का रुक जाना मुश्किल बात होती है। ऐसी दशा में यदि चोट हाथ या पैर में हो तो उस भाग को शरीर से ऊपर उठा देना चाहिए। यदि सिर या चेहरे पर चोट हो तो रोगी को खाट पर बिठाकर उसके पीछे सहारे के लिए तकिया लगा देना मुनासिब होता है। करवटों में घाव होने पर रोगी को एक करवट से लिटाएं और चोटवाली करवट ऊपर रखें। पेट पर घाव होने पर रोगी को आराम से सीधा लिटाना चाहिए।

भारी रक्तस्राव होने की हालत में उस अंग से सम्बन्धित धमनी पर दबाव डालकर भी खून के बहाव को रोका जा सकता है।

⊙ गर्दन और उससे ऊपर के भाग के घावों का रक्त बन्द करने के लिए गर्दन से गुज़रनेवाली धमनी पर दबाव डालना चाहिए (देखिए चित्र १)।



चित्र १



चित्र २

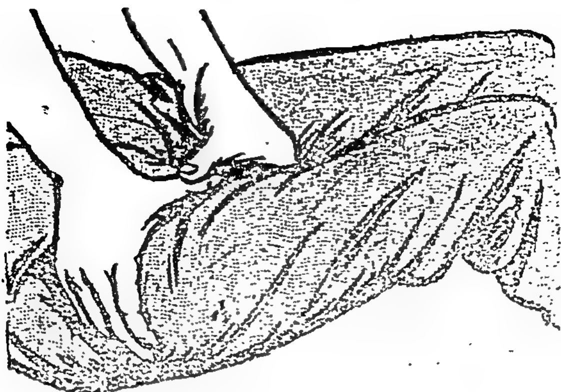
● छाती की चोट का खून वन्द करने के लिए चित्र में दिखाए अनुसार कालर की हड्डी के नीचे दवाव डालना चाहिए (देखिए चित्र २)। यहां हलका-सा एक गढ़ा पड़ता है, उसीके नीचे से धमनी गुजरती है। इस स्थान पर दवाव डालने से धमनी अंगूठे और पहली पसली के वीच आकर दवेगी।

● कोहनी से नीचे की चोटों के लिए भुजा के वग़ल से गुजरने-वाली धमनी दवाई जाती है (देखिए चित्र ३)।



चित्र ३

● जांघ के घाव का खून वन्द करने के लिए रोगी को विठाना चाहिए और चित्र में दिखाए अनुसार जांघ की जड़ में ऊपर की तरफ अंगूठों से धमनी को दवाना चाहिए, (देखिए चित्र ४)। इसपर



चित्र ४

पूरा दवाव पड़ने से पूरी टांग में किसी भी स्थान का खून वन्द किया जा सकता है ।

एक और सावधानी—जब किसी व्यक्ति को गहरी चोट पहुंचती है तो उसे एक आघात या सदमा पहुंचता है । ऐसी हालत में खून बन्द करने के प्रयत्न के साथ ही साथ हमें इस सदमे की ओर भी ध्यान देना चाहिए । हालांकि इस सदमे का असर ज्यादातर मन पर ही होता है लेकिन शरीर पर भी इसका भारी प्रभाव पड़ता है । अतः रोगी को फौरन पानी, दूध या चाय पिला देनी चाहिए । इससे रोगी फौरन ही एक ताज़गी और ताकत का अनुभव करता है और शरीर पर से सदमे का असर हट जाता है । अधिक खून निकलने की दशा में यूं भी तरल पेय, पानी, दूध, फलों का रस इत्यादि खूब पिलाना चाहिए ताकि शरीर से निकलनेवाले तरल की पूर्ति होती रहे ।

जहां रक्तस्राव ज्यादा हो रहा हो वहां उपर्युक्त उपायों का अवलम्बन करने के साथ ही फौरन या तो डाक्टर को बुलाना चाहिए, अथवा रोगी को अस्पताल भेजने का इंतजाम करना चाहिए ।

शरीर के भीतरी अंगों से रक्तस्राव

जिस तरह कोई भी आकस्मिक घटना होने पर शरीर के किसी

भी वाहरी अंग या हिस्से से खून वह सकता है, इसी प्रकार शरीर के भीतरी अवयवों पर चोट पहुंचने से उनसे भी वहुत खून निकल सकता है। यह वात कई प्रकार की दुर्घटनाओं के फलस्वरूप हो सकती है, जैसे कुचला जाना, धक्का लगना, हड्डी टूटना, छुरा या गोली लगना। इसके अतिरिक्त कई पुरानी और गम्भीर वीमारियों में भी भीतरी रक्तस्राव हो जाता है। वाहरी हिस्सों की वनिस्वत भीतरी अवयवों का रक्तस्राव खतरनाक होता है। लक्षणों की दृष्टि से यह भीतरी रक्तस्राव दो हिस्सों में बांटा जा सकता है—(१) दिखाई देनेवाला रक्तस्राव, (२) अदृश्य रक्तस्राव।

दिखाई देनेवाला रक्तस्राव

निम्नलिखित अवयवों का रक्तस्राव जाहिर हो जाता है :

● फेफड़ों से रक्तस्राव होने पर खांसी उठकर खून आता है जो झागदार होता है और उसका रंग चमकीला लाल होता है।

● पेट में रक्तस्राव होने पर कै (वमन) के साथ खून आता है और अक्सर उसका रंग गहरा लाल या कुछ कालापन लिए हुए लाल होता है।

● ऊपर की (छोटी) आंतों से रक्तस्राव होने पर खून पाखाने के साथ मिलकर आता है और उसका रंग तारकोल की तरह काला होता है। पानी डालने पर कालापन घुलकर लाल हो जाता है।

● नीचे की (वड़ी) आंतों से रक्तस्राव होने पर रक्त अपने असली लाल रंग में पाखाने के साथ मिला हुआ दिखाई देता है।

● गुर्दों से रक्तस्राव होने पर खून पेशाव के साथ मिलकर आता है और पेशाव का रंग काले धुएं जैसा अथवा लाल होता है। इस हालत में कमर के नीचे के हिस्से में दोनों तरफ जहां गुर्दे होते हैं वहां दर्द भी महसूस हो सकता है।

● मसाने से रक्तस्राव होने पर भी खून पेशाव के साथ ही आता है। इस हालत में पेशाव करने में रोगी को काफी दर्द भी महसूस होता है।

अदृश्य रक्तस्राव

हड्डी टूटकर जव भीतर ही भीतर मांस में घुस जाती है तो उस स्थान

पर काफी रक्तस्राव हो सकता है जो दिखाई नहीं पड़ेगा। इसके अति-रिक्त दूसरे भीतरी अवयव जैसे जिगर, तिल्ली या पैन्क्रिआज से खून निकलने पर वह उदर में ही जमा होता है, बाहर ज़ाहिर नहीं होता। निश्चय ही इस तरह का रक्तस्राव काफी खतरनाक होता है। जबकि रक्तस्राव के लक्षण मौजूद हों तो इस बात की खोज करनी चाहिए कि रोगी का उदर कहीं पिचा तो नहीं है अथवा उदर में कोई आघात पहुंचा है या नहीं।

अदृश्य रक्तस्राव के लक्षण

- बैठने पर सर चकराना और मूर्च्छा आ जाना।
- चेहरे और होंठों का सफेद पड़ जाना।
- चमड़ी ठण्डी पड़ना।
- बहुत तेज़ प्यास लगना।
- बेचैनी, उत्तेजना और ज़्यादा बोलना।
- नब्ज़ पतली और तेज़ चलने लगती है; और प्रायः कलाई पर अनुभव नहीं होती।
- सांस लेने में रोगी को कष्ट होता है और बहुत मेहनत पड़ती है। वह कराहता है और जम्हाइयां लेता है।
- रोगी हवा की कमी महसूस करता है और ज़्यादा से ज़्यादा हवा पाने के लिए छटपटाता है।
- बहुत बार रोगी बेहोश भी हो जाता है।

ऊपर लिखे सभी लक्षण रोगी को गहरा सदमा पहुंचने की वजह से भी हो सकते हैं। लेकिन तेज़ प्यास और हवा के लिए छटपटाना तथा बेचैनी भीतरी रक्तस्राव होने के पक्के चिह्न हैं। ऐसी अवस्था रोगी के लिए खतरनाक होती है।

चिकित्सा—जितनी जल्दी से जल्दी हो सके रोगी को फौरन अस्पताल भेज देना चाहिए। 'भीतरी रक्तस्राव का सन्देह है' ऐसा एक नोट लिखकर भी रोगी के साथ भेजना अच्छा रहता है ताकि अस्पताल का डाक्टर अविलम्ब उसके उपचार में लग जाए। ऐसी दशा में रोगी को कोई भी दवा अथवा खाने-पीने की चीज़ नहीं देनी चाहिए।

त्वचा (जिल्द) पर लगनेवाली चोटें

नील या गूमड़ा—किसी भी प्रकार की चोट लगने पर जब त्वचा न फटे और छोटी केशिकाओं के फटने के फलस्वरूप हुआ रक्तस्राव जिल्द के नीचे ही जमा हो जाए तो उसे नील पड़ जाना या गूमड़ा उठ आना कहते हैं। नील और गूमड़े में इतना ही फर्क होता कि कम रक्तस्राव होने पर चुटीला स्थान जब थोड़ा सूजता है तो उसे नील कहते हैं और अधिक रक्तस्राव के कारण जब ज्यादा उठाव आ जाता है तो उसे ही गूमड़े का नाम दे दिया जाता है। बहरहाल, दोनों हालतों में उस हिस्से का रंग बदलकर नीलापन लिए हुए कुछ लाल-सा हो जाता है। लाठी की चोट से, ऊंचे स्थान से गिरने पर, ठोकर लगने पर तथा और भी इसी तरह की किसी भी आकस्मिक चोट से नील या गूमड़ा पड़ सकता है।

यूं तो ये साधारण चोटों की श्रेणी में आते हैं और इनके किसी खास इलाज की जरूरत नहीं होती। कुछ समय बाद ये खुद ही ठीक हो जाते हैं। लेकिन यदि किसी स्थान का गूमड़ा काफी बड़ा हो तो उसपर ठण्डे पानी का कपड़ा या बर्फ की थैली रखनी चाहिए। यदा-कदा इस गूमड़े में जहरीला मादा भी पैदा हो जाता है; और गूमड़ा पकने लगता है; तब फिर इसका इलाज फोड़े की तरह करना होता है। पकना शुरू होने पर वहां सुर्खी पैदा हो जाती है और सूजन तथा दर्द बढ़ जाता है। इस दशा में गर्म पानी का सेंक फायदा पहुंचाता है।

छाले—हमारे शरीर की त्वचा की दो परतें होती हैं—बाहरी और भीतरी। बाहरी परत पर अक्सर चोटें लगती रहती हैं। कोई भी छोटी-मोटी खरोंच या चोट इस बाहरी परत पर ही लगती है। इस सिल-सिले में छाले पड़ जाना एक मामूली-सी बात है। बहुत बार नया जूता पहनने पर छाले पड़ जाते हैं अथवा जूता पहनकर पैदल लम्बी यात्रा करने से भी छाले पड़ जाते हैं। अनभ्यस्त व्यक्ति यदि नंगे पैर चलते हैं तो उनके पैरों में भी छाले पड़ जाते हैं। छाले और भी छोटे-मोटे अनेक कारणों से पड़ सकते हैं। लेकिन छाला पड़ने में प्रक्रिया क्या होती है यह समझना चाहिए। छाला पड़ने की प्रक्रिया और कुछ नहीं

इसमें केवल त्वचा की दोनों परतें अलग हो जाती हैं और इन दोनों के वीच पीला-सा पानी भर जाता है। छाले कोई भयानक वीमारी नहीं होते ; अलवत्ता इनमें जलन और दर्द काफी होता है।

इनका इलाज वहुत मामूली है, अर्थात् कैंची से छाले की पूरी ऊपर की परत काट देनी चाहिए ताकि पानी निकल जाए ; और फिर उसपर घर में इस्तेमाल होनेवाला पाउडर छिड़ककर पट्टी वांध देनी चाहिए। पाउडर के अलावा इसपर वेसलीन भी लगाई जा सकती है। और इन दोनों चीज़ों के अभाव में पानी की गद्दी भी वहुत वढ़िया रहती है। पानी में वस्तुतः हर प्रकार के ज़ख्मों को भर देने की अद्भुत प्राकृतिक शक्ति होती है। 'छाले को फोड़ना या काटना नहीं चाहिए वरना उसमें ज़हर फैल जाता है' ऐसी धारणा आम लोगों में प्रचलित है, लेकिन यह धारणा गलत है। छाले को अगर आप नष्ट नहीं करेंगे तो उसके भीतर भरा पानी और ज़्यादा वढ़ेगा और छाला फैलकर वढ़ता जाएगा। साथ ही उसमें ज़हरीला असर पैदा होकर मवाद पड़ जाता है। छाला यदि खुद ही फूट जाए तो भी उसकी ऊपर की खाल की परत काट देनी चाहिए; अन्यथा उसका छेद वन्द होकर उसमें दोवारा पानी भर जाता है। दरअसल ज़हर फैलने की वात तव पैदा होती है जव छाले को विना साफ की हुई कैंची या किसी दूसरी चीज से फोड़ा या काटा जाता है। काटने से पहले औज़ार को या तो गर्म पानी में उवाल लेना चाहिए अथवा उसे स्प्रिट से साफ कर लेना चाहिए।

ज़ख्म

खून वन्द हो जाने के वाद ज़ख्म की समस्या आती है। दर-असल ज़ख्म के लिए किसी तात्कालिक उपचार की ज़रूरत नहीं होती ; क्योंकि ज़ख्म आहिस्ता-आहिस्ता काफी समय वाद भरता है। लेकिन ज़ख्म कैसा वन गया है इस वात पर रोगी का वहुत कुछ हानि-लाभ निर्भर होता है। छुरे का ज़ख्म अथवा और किसी दुर्घटनावश कोई तेज पत्थर या औज़ार किसी अंग में गहरा वैठ गया हो—अर्थात् किसी भी कारण से वने ऐसे गहरे ज़ख्म रोगी की हालत को गम्भीर वना सकते हैं। इसलिए खून वन्द होने अथवा उसका वहना कम हो जाने पर

तुरन्त ही रोगी को डाक्टर की देख-रेख में दे देना चाहिए। गहराई के अलावा ज़ख्म में ज़हरवाद फैलने का भी पूरा खतरा रहता है; और 'टिटेनस' हो जाने का भी बहुत अंदेशा होता है; क्योंकि मांस में घुसनेवाले औज़ार में उपर्युक्त दोनों रोगों को पैदा करनेवाले कीटाणु हो सकते हैं। ये दोनों रोग यदि बढ़ जाएं तो रोगी का जीवन ही खतरे में आ सकता है।

पशुओं के काटे से बने ज़ख्म

इन ज़ख्मों की हालत प्रायः बहुत बुरी हो जाती है। पहली बात तो यह कि इनमें प्रायः शुरू से ही ज़हरीला माद्दा पैदा हो जाता है क्योंकि अनेक पशुओं की लार ज़हरीली होती है। दूसरे उनके जबड़े के बीच आकर गोश्त कुचला जाता है। हालांकि इस प्रकार के ज़ख्मों में ज़्यादा खून तो नहीं निकलता, किन्तु इनकी मरहम-पट्टी की व्यवस्था डाक्टर ही ज़्यादा अच्छी कर सकता है। प्रारम्भिक चिकित्सा के रूप में ज़ख्मों को साफ पानी से धोकर और पानी की गद्दी बांधकर घायल को फौरन ही अस्पताल में या डाक्टर के पास भेज देना चाहिए।

कीड़ों द्वारा काटे जाना

कीड़ों (बिच्छू, ततैया, मधुमक्खी) के काटने से हालांकि कोई खास ज़ख्म नहीं बनता लेकिन अपने डंक से जो ज़हर ये शरीर में डाल देते हैं उससे तकलीफ काफी होती है। भिन्न-भिन्न स्थानों पर इनके भिन्न-भिन्न घरेलू इलाज प्रचलित हैं। किन्तु इनका सबसे अच्छा और फौरन आराम देनेवाला इलाज मिट्टी है। साफ पीली मिट्टी गीली करके डंक लगे भाग पर थोप देनी चाहिए। साथ ही एक-दो गिलास ताज़ा पानी पी डालना चाहिए ताकि खून में ज़हर का असर हलका हो जाए। इन कीड़ों के काटने से आई सूजन खुद ही ठीक हो जाती है। उसके लिए किसी उपचार की ज़रूरत नहीं होती।

सांप द्वारा काटे जाना

सांप अपने ऊपर के दो दांतों द्वारा शरीर में इन्जेक्शन की तरह

विष प्रवेश करा देता है। वस्तुतः सांप की जिस जीभ से लोग डरते हैं उससे कोई नुक्सान नहीं पहुंचता। ज़हरीले सांप के काटने पर दो •• इस तरह के निशान होते हैं। यदि निशान दो से ज्यादा हों तो आम तौर पर काटनेवाला सांप ज़हरीला नहीं होता। अथवा इसका यह अर्थ भी होता है कि सांप ने अपने ज़हरीले दांत नहीं इस्तेमाल किए हैं।

अधिकतर सांप हाथ या पैर की अंगुलियों में, अंगूठों में, टखने पर अथवा हाथ में काटता है। सोया हुआ व्यक्ति काटने पर जाग जाता है। उसे कोई चीज़ चुभने जैसी पीड़ा होती है लेकिन शुरू में दर्द ज़्यादा नहीं होता। आगे चलकर पैदा होनेवाले लक्षण सांप की जाति पर निर्भर करते हैं। हमारे देश में पाए जानेवाले सांपों की दो ही जातियां ज़हरीली होती हैं—(१) कोब्रा और (२) वाइपर। वाइपर को 'पद्म' भी कहते हैं। कोबरा के काटने का असर खून में तो कम होता है लेकिन इसका ज़हर स्नायुमण्डल में ज़्यादा दौड़ता है जिसका फल होता है फालिज़ का असर—श्वास-प्रश्वास केन्द्र पर फालिज़ का असर होने से व्यक्ति मर जाता है। दूसरी ओर वाइपर के ज़हर का प्रभाव स्नायु-मण्डल पर कम और खून पर ज़्यादा होता है। इसके ज़हर से खून में जमने की शक्ति खत्म हो जाती है जिसे खून का पानी बन जाना कहा जाता है।

सांप के काटने पर लगाए जानेवाले इंजैक्शनों में इन दोनों प्रकार के सांपों के विष को समाप्त कर देने की शक्ति होती है।

कोबरा के काटने पर रोगी को मूर्च्छा-सी आने लगती है, पैरों में खड़े होने की ताकत नहीं रहती; किसी-किसीको कै भी होने लगती है। इसके बाद उसे श्वास लेने में कष्ट होने लगता है; बोलने या कोई चीज़ निगलने की ताकत जाती रहती है, ज़बान बाहर को निकल आती है और मुंह से झाग आने लगता है। सारे शरीर में एक अकड़ाहट और सख्ती-सी आने लगती है। कभी-कभी ठण्डे पसीने भी आते हैं और रोगी बेहोश होकर कुछ घण्टों में मर जाता है। प्रायः ऐसा भी होता है कि रोगी कई दिन तक बचा रहता है। ऐसी हालत में ज़हर शरीर में फूट पड़ता है। हाथ-पैर सूज जाते हैं; काटने के स्थान पर

छाले पड़ जाते हैं। मसूढ़ों और नाक से खून भी आने लगता है। दरअसल लक्षणों की कमी-बेशी शरीर में पहुंचे हुए विष की मात्रा पर निर्भर करती है।

वाइपर के काटने पर जैसाकि बताया गया है स्नायविक लक्षण कम होते हैं। फिर भी लक्षण विष की मात्रा पर ही निर्भर करते हैं। यदि विष अधिक मात्रा में पहुंचा है तो मृत्यु बहुत जल्दी हो जाती है। और अगर व्यक्ति कुछ समय तक बचा रहता है तो ज़ख्म से बराबर खून बहता रहता है। और कुछ समय बाद नाक, आंख, और मुंह से भी खून बहना शुरू हो जाता है। चूंकि खून में जमने की शक्ति खत्म हो जाती है इसलिए उसका रोकना ही असम्भव बन जाता है और अन्त में रोगी मर जाता है।

इलाज के सिलसिले में सबसे पहले यह देखने की कोशिश करनी चाहिए कि कैसे सांप ने काटा है। हो सके तो सांप तलाश करना चाहिए। कई बार ऐसा होता है कि काटनेवाला सांप ज़हरीला नहीं होता, लेकिन रोगी सिर्फ दहशत से ही मर जाता है।

चिकित्सा—फौरन ही काटे हुए हिस्से से कुछ ऊपर कसकर एक बंध लगा देना चाहिए। यदि सांप ने हाथ या पैर में काटा हो तो बंध कोहनी के नीचे अथवा घुटने के नीचे नहीं बांधना चाहिए, क्योंकि इन दोनों हिस्सों में दो-दो हड्डियां होती हैं और रक्त की नलिकाएं उनके बीच से होकर गुज़रती हैं। अतः इन स्थानों पर बंध लगाने से रक्त-प्रवाह नहीं रुकेगा। बन्ध हमेशा घुटने के और कोहनी के ऊपर ही बांधना चाहिए। बंध बांधने के साथ ही डाक्टर को बुलाने के लिए आदमी भेज देना भी ज़रूरी होता है।

बंध लगा देने के बाद काटे हुए स्थान को चाकू से थोड़ा चीर-कर वहां पोटाशियम परमैंगनेट के थोड़े-से दाने भर देने चाहिए। यदि ऐसा करना किसी कारण से सम्भव न हो सके अथवा सांप ने छाती, पेट या गर्दन पर काटा हो जहां बन्ध ही न लगाया जा सके तो फिर ज़ख्म को चूस डालना ही सबसे बढ़िया उपाय होता है। लेकिन चूसनेवाले के मुंह में कोई घाव या ज़ख्म नहीं होना चाहिए। अथवा एहतियात के लिए उसे अपने मुंह में रुई या कपड़े का टुकड़ा

रख लेना चाहिए।

जहां डाक्टर की सुविधा न हो वहां फिर जल-चिकित्सा का आश्रय लेना चाहिए। जल-चिकित्सक यह मानते हैं कि सांप का ज़हर शरीर में इतनी तेज़ गर्मी पैदा कर देता है कि आदमी गर्मी के कारण ही मर जाता है। कदाचित् इसी सिद्धान्त पर सांप के काटे मुर्दे को जलाया नहीं जाता, पानी में बहा दिया जाता है। और इस तरह की घटनाएं होती हैं कि बहाया हुआ व्यक्ति जी उठता है।

पानी की ठण्डक से ज़हर की गर्मी मर जाती है और रोगी बच जाता है। इसलिए यदि रोगी को शुरू से ही पानी में रखा जाए अथवा उसके सिर पर लगातार पानी डाला जाए तो उसके बचे रहने की कुछ अधिक संभावना रहती है। पानी की यह क्रिया लगातार बारह घण्टे तक जारी रखी जा सकती है।

यूं सांप के काटे के टोने-टोटके बहुत हैं किन्तु वैज्ञानिक आधार पर वे कहां तक विश्वसनीय हैं, यह कहना कठिन है। हां 'एण्टी-वैनम सीरम', जो सांप के काटे की खास दवा है, के इन्जैक्शन यदि समय से लग जाते हैं तो रोगी को बचाया जा सकता है।

जोड़ों की मोच

मोच का अर्थ है जोड़ का एक खास दिशा में झटके के साथ मुड़ जाना। इस प्रकार मुड़ने से जोड़ की हड्डी को बांधनेवाले बन्धन बुरी तरह खिचते हैं यहां तक कि भीतर ही भीतर उनका थोड़ा-बहुत हिस्सा फट या चिर जाता है। मोच की हालत में वहां थोड़ा-बहुत खून आकर ज़रूर जमा हो जाता है जैसाकि नील पड़ जाने की दशा में होता है। साथ ही हड्डी को ढकनेवाली झिल्ली से भी थोड़ा-सा चिकना-चिकना पानी निकलकर जमा हो जाता है, फलस्वरूप मोच खाया हुआ स्थान सूज जाता है।

मोच का इलाज बहुत साधारण है। वह सिर्फ यह कि शरीर के मोच खाए हुए भाग को पूरा आराम दिया जाए। इसके लिए उस स्थान पर रुई रखकर कसकर पट्टी बांध देनी चाहिए ताकि वह हिस्सा हिलाया-जुलाया न जा सके। मोच चाहे जितनी भी सख्त क्यों

न आई हो, पूरा आराम देने से बिलकुल ठीक हो जाती है। क्योंकि आराम द्वारा फटे हुए बन्धन कुदरती तौर पर पूरी तरह जुड़ जाते हैं। सख्त मोच की हालत में हो सकता है कि रोगी को तीन-चार सप्ताह तक आराम करना पड़े। लेकिन जो लोग आराम नहीं करते हैं उनके जोड़ ढीले पड़ जाते हैं। उनमें बार-बार मोच आ सकती है और सर्दी लगने पर वह जोड़ दर्द कर सकता है। यूं हमारे यहां मोच आने पर मालिश कराने की प्रथा है; लेकिन मालिश आराम की पूर्ति नहीं करती।

आम तौर पर पैर के टखनों के जोड़ मोच खा जाते हैं। मोच तभी आती है जब किसी भी कारण से पैर झटके के साथ भीतर को एक-ब-एक मुड़ जाता है। इस दशा में चलना-फिरना तो क्या रोगी को पैर रखना तक दूभर हो जाता है। रोगी को जोड़ में बहुत दर्द महसूस होता है। इस दर्द को दूर करने के लिए गर्म पानी में नमक डालकर उसकी धार डालनी चाहिए और फिर ऊपर लिखे के अनुसार रुई रखकर सख्त पट्टी बांधकर रोगी को पूरे आराम से बिस्तर पर लिटा देना चाहिए।

कभी-कभी हाथ की कलाई में भी मोच आ जाती है। इसका इलाज भी ठीक इसी प्रकार करना चाहिए। हां, अलबत्ता इसमें मरीज़ चलने-फिरने से मजबूर नहीं होगा। उसके गले में एक पट्टी लटकाकर कलाई को आराम से उसमें रखे रहना मुनासिब होता है (देखिए 'लटकानेवाली पट्टियां', पृष्ठ ५६)।

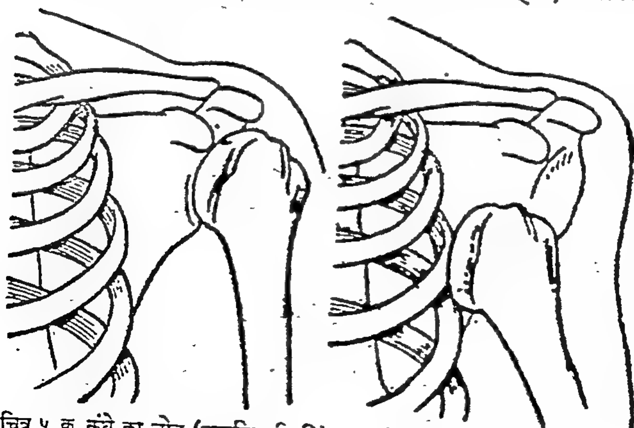
जोड़ उखड़ना

शरीर में जोड़ वहां है जहां दो या अधिक हड्डियां आपस में फिट होती हैं। शरीर में ये जोड़ तीन तरह के होते हैं—(१) जो हिल-डुल नहीं सकते—जैसे खोपड़ियों की हड्डियों के जोड़, (२) थोड़ी हरकत करनेवाले—जैसे रीढ़ की हड्डियों के जोड़, (३) कुछ दिशाओं में अच्छी तरह घूम जानेवाले—जैसे कन्धे, कोहनी, कलाई, अंगुलियों, कूल्हे, घुटने, टखने और पैर के अंगूठे के जोड़। इस तीसरी किस्म में घुटने, अंगुली और कलाई के जोड़ों की बनावट कूल्हे और कन्धों के जोड़ों

से भिन्न है। वास्तव में कूल्हे और कन्धों के जोड़ों में एक हड्डी का गोल गेंदनुमा सिरा दूसरी हड्डी के गढ़े में फिट होता है। जबड़े का जोड़ भी इसी प्रकार का है।

जोड़ उखड़ने का अर्थ है हड्डी के एक सिरे का अपने स्वाभाविक स्थान से हट जाना। किसी भी दुर्घटना में जब किसी जोड़ पर आघात पहुंचता है अथवा कन्धा, कोहनी, कलाई आदि झटके के साथ ज़रूरत से ज्यादा मोड़ खा जाते हैं तो जोड़ उखड़ने की स्थिति पैदा हो जाती है। मोच आने, जोड़ उखड़ने और हड्डी टूट जाने के कारण प्रायः एक-से ही होते हैं। दुर्घटनाओं के अलावा बहुत बार अखाड़े में कुश्ती लड़ते हुए अथवा कोई जोरदार कसरत करते हुए भी जोड़ उखड़ जाते हैं। यूं तो कोई भी जोड़ परिस्थितिवश उखड़ सकता है, लेकिन कन्धे का जोड़ और जबड़े का जोड़ ही सामान्यतया उखड़ता है। कन्धे या दूसरे किसी स्थान का जोड़ उखड़ जाने की हालत में हालांकि मोच की अपेक्षा दर्द कम होता है, लेकिन रोगी उस अंग को हिला-डुला नहीं सकता। दूसरी ओर के जोड़ की अपेक्षा उखड़े हुए जोड़ की सूरत बदली हुई दिखाई देती है। उखड़े हुए हिस्से पर सूजन भी आ सकती है।

जोड़ को अपने स्थान पर बिठाने का काम दरअसल हरएक व्यक्ति



चित्र ५ क. कंधे का जोड़ (प्राकृतिक स्थिति)　　चित्र ५ ख. उखड़ा हुआ जोड़

को नहीं करना चाहिए ; यह काम वास्तव में विशेषज्ञ डाक्टर का ही होता है। हमारे समाज में अक्सर अखाड़े के उस्ताद या मोच मलनेवाले जोड़ भले ही बिठा दें लेकिन उनके सभी तौर-तरीके अवैज्ञानिक और अविश्वसनीय होते हैं। इसलिए ऐसे रोगी को कभी इन लोगों के हाथ में नहीं देना चाहिए। क्योंकि इसके लिए पहले शरीर की बनावट का ज्ञान ज़रूरी होता है और वह एक डाक्टर को ही होता है, कुश्ती लड़नेवाले उस्ताद को नहीं। बहुत बार जोड़ उखड़ने के साथ ही साथ हड्डी भी टूट जाती है। ऐसी हालत में बिना एक्सरे कराए उस अंग के साथ छेड़छाड़ करना रोगी के हक में बहुत बुरा साबित होता है।

जोड़ उखड़ना वस्तुतः कोई जान-जोखिम की दुर्घटना नहीं होती जहां कि तत्काल चिकित्सा की ज़रूरत हो। घटना के दो-चार घण्टे बाद तक भी यदि रोगी को अस्पताल पहुंचाया जाए, तो भी कोई हानि नहीं होती। उस समय तो सिर्फ इतना कर देना चाहिए कि उखड़े जोड़ पर कोई सख्त गत्ते का टुकड़ा अथवा बांस की खपच्ची (स्प्लिण्ट) रखकर ऊपर से रुई फैलाकर बांध देनी चाहिए ताकि चोट जैसी है वैसी ही रहे और आगे कोई खराबी पैदा न हो। और फिर रोगी को यथासम्भव शीघ्र ही अस्पताल पहुंचाने का इन्तज़ाम कर देना अच्छा रहता है।

अस्पताल में अथवा और किसी डाक्टर द्वारा जोड़ ठीक बिठा देने के बाद भी काफी लम्बे समय तक उस जोड़ को आराम दिया जाता है। इसके लिए जोड़ पर तख्ती बांध दी जाती है। वस्तुतः आराम देने का एकमात्र उद्देश्य यह होता है कि जोड़ ढीला पड़कर दोबारा न उखड़े। ऐसी सूरत में उस अंग से न जल्दी कोई हरकत करनी चाहिए और न उससे कोई काम ही लेना चाहिए। जो लोग इस परहेज़ को नहीं निभाते, उनके जोड़ बार-बार उखड़ने के आदी हो जाते हैं और उस हिस्से की पेशियां और बन्धन ढीले पड़ जाते हैं।

जबड़े का जोड़ उखड़ना अलबत्ता दूसरे जोड़ों से बहुत भिन्न होता है। जम्हाई लेते समय अधिक मुंह फाड़ने से, बहुत मुंह फाड़कर हंसने से या अन्य किसी कारणवश असाधारण रूप से मुंह खुल

जाने के फलस्वरूप नीचे का जवड़ा अपने स्थान से हटकर नीचे की ओर लटक जाता है और रोगी अपना मुंह वन्द नहीं कर सकता, न अच्छी तरह बोल सकता है। नीचे की दन्तपंक्ति ऊपर के दांतों से आगे आ जाती है। ऐसी हालत में वहुत-से लोगों की लार भी टपकने लगती है। कभी-कभी जवड़ा एक ही ओर से उखड़ता है। उस सूरत में नीचे का हिस्सा उस ओर को झुककर टेढ़ा हो जाता है। जवड़े को चढ़ा देने का काम कोई जोखिम का नहीं होता इसलिए इसे घर पर ही ठीक किया जा सकता है। जवड़ा चढ़ाने का उपचार करने से पहले रोगी के दांतों के वीच में एक लम्बा-चौड़ा कार्क या कपड़े की गद्दी इस तरह फंसा देनी चाहिए कि वह वहां से हट न पाए। फिर अपने दोनों अंगूठों को रोगी की नीचे की दाढ़ों पर टेककर जवड़े को नीचे और पीछे की तरफ दवाना चाहिए। साथ ही अंगुलियों से ठोड़ी को ऊपर उठाने की कोशिश करनी चाहिए। उपचार करने-वाले को यह समझ लेना चाहिए कि नीचे के जवड़े के जो सींग के समान हिस्से ऊपरी जवड़े के गढ़ों से निकल गए हैं, उन्हें ठीक जगह पर विठा देना है। ये हिस्से अपनी जगह वैठते ही मुंह एक झटके के साथ वन्द हो जाएगा। ऐसी हालत में अगर दांतों के वीच कार्क या गद्दी न होगी तो उपचारक के अंगूठे वुरी तरह कुचले जा सकते हैं।

हड्डी टूटना (फ्रैक्चर)

हड्डी टूटने को अंग्रेज़ी में 'फ्रैक्चर' कहते हैं। सुविधा के लिए हम इस अध्याय में हड्डी टूटने के लिए 'फ्रैक्चर' शव्द का ही इस्तेमाल करेंगे। फ्रैक्चर की स्थिति वहुत मामूली और आसानी से ठीक हो जानेवाली भी हो सकती है और इतनी गम्भीर भी कि रोगी की जान-जोखों का खतरा हो सकता है। इसलिए 'फर्स्ट एड' का ज्ञान रखनेवालों को भी फ्रैक्चर से छेड़छाड़ नहीं करनी चाहिए; इसके अतिरिक्त कभी भूलकर भी मालिश करनेवालों या पहलवानों के हाथ में ऐसा केस नहीं देना चाहिए। क्योंकि फ्रैक्चर ठीक करने के लिए शरीर की वनावट और हड्डियों की स्थिति का ज्ञान होना वहुत जरूरी है जोकि डाक्टर को ही हो सकता है। मालिश करनेवाले पहल-

वान इस विषय में विलकुल कोरे होते हैं। ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है कि जहां मालिश करनेवालों के हाथ में पड़कर लोग मुस्तकिल तौर पर अपाहिज वन गए हैं। आधुनिक वैज्ञानिक साधनों ने फ्रैक्चर की चिकित्सा-कला को वहुत उन्नत वना दिया है। मालिश करनेवाले लोग अज्ञान होने के साथ ही साथ साधनहीन भी होते हैं।

फ्रैक्चर कई प्रकार के होते हैं। **साधारण या सिम्पल फ्रैक्चर** में शरीर की जिल्द को कोई नुकसान नहीं पहुंचता, वह यथास्थान रहती है केवल भीतर की हड्डी टूट जाती है। जब टूटी हुई हड्डी के टुकड़े खाल के साथ चिपट जाते हैं और साथ ही वहां जख्म वन जाए तो उसे **कम्पाउण्ड फ्रैक्चर** कहते हैं। जब टूटी हुई हड्डी शरीर के किसी



चित्र ६. सिम्पल फ्रैक्चर



चित्र ७. कम्पाउंड फ्रैक्चर

दूसरे अवयव या अंग जैसे दिमाग, सुषुम्ना नाड़ी, स्नायु, फेफड़े, जिगर, तिल्ली, गुर्दे, वड़ी-वड़ी धमनियों आदि को नुकसान पहुंचाए अथवा फ्रैक्चर के साथ-साथ जोड़ भी उखड़ गया हो तो वह स्थिति **कम्प्लिकेटेड फ्रैक्चर** कहलाती है। वच्चों में ज्यादातर **'ग्रीन स्टिक फ्रैक्चर'** होता है। चूंकि उनकी हड्डियां मुलायम होती हैं इसलिए उनके दो टुकड़े न होकर वे किसी हरी डण्डी की तरह मुड़ जाती हैं और वहां से एकाध पच्चर उभर जाता है।

खोपड़ी, गर्दन और रीढ़ की हड्डी के कशेरूकाओं के फ्रैक्चर आम तौर पर वड़े खतरनाक होते हैं। खोपड़ी की किसी हड्डी का फ्रैक्चर होने पर जव दिमाग में चोट पहुंचती है तो नाक, कान अथवा आंखों से खून आ सकता है। यदि रोगी अपनी अंगुलियां न चला सके तो समझना चाहिए उसकी गर्दन की हड्डी टूटी है। यदि वह अपनी टांग न हिला सके तो उसकी कमर में फ्रैक्चर हो सकता है। वस्तुतः जव रीढ़ की हड्डी के कशेरूकाओं के कांटे टूट जाते हैं तो वहां से निकलने-वाले स्नायु कुचले जाते हैं अथवा कशेरूका और टूटे हुए भाग के वीच आकर पिच जाते हैं, जिसके कारण उनसे सम्वन्वित क्रियाएं वन्द हो जाती हैं।

फ्रैक्चर के कुछ लक्षण और चिह्न

१. उस स्थान पर तथा उसके आसपास के भाग में दर्द।

२. उस स्थान पर साधारण दवाव भी वर्दाश्त नहीं होता।

३. उस स्थान पर सूजन आ जाना। सूजन से चोट की गम्भीरता वढ़ी हुई समझनी चाहिए।

४. उस हिस्से की शक्ति खतम हो जाती है, जिसके कारण रोगी उस भाग को हिला-डुला नहीं सकता।

५. फ्रैक्चरवाले भाग की शक्ल वदल जाती है। स्थान-भेद से वह कहीं दवा हुआ या उठा हुआ हो सकता है। विलकुल त्वचा के नीचे होने पर गढ़े या उभार को हाथ लगाकर भी महसूस किया जा सकता है।

६. हड्डी के टुकड़ों का रड़कना सुना भी जा सकता है और

महसूस भी किया जा सकता है (किन्तु इस चिह्न का पता लगाने की कोशिश नहीं करनी चाहिए)।

७. सामान्य अवस्था के विपरीत टूटे हुए भाग को हिलाया-डुलाया जा सकता है (यह परीक्षा भी डाक्टर को ही करनी चाहिए, अनजान व्यक्ति को नहीं)।

८. फ्रैक्चर हुआ भाग शरीर के दूसरे बाजू के उसी भाग से भिन्न और छोटा दिखाई देगा (यह बात विशेष रूप से टांग तथा भुजा के फ्रैक्चर में देखी जा सकती है)।

प्रारम्भिक चिकित्सा—फ्रैक्चर की चिकित्सा कोई आसान काम नहीं है। इसलिए उसे छेड़ने की कभी कोशिश नहीं करनी चाहिए। सिर्फ इतनी एहतियात ही काफी होती है कि फ्रैक्चर की हालत और ज़्यादा खराब न हो जाए। कहीं वह साधारण फ्रैक्चर से कम्पाउण्ड फ्रैक्चर न बन जाए तथा शरीर के किसी महत्त्वपूर्ण अंग, दिमाग, सुषुम्ना आदि को हानि न पहुंचे। हां, यदि रोगी को रक्तस्राव हो रहा हो तो उसे प्रारम्भिक चिकित्सा द्वारा अवश्य रोक देना चाहिए। जबकि रोगी की दशा ज़्यादा खराब दिखाई दे तो ऐसे समय में उसे उठाकर अस्पताल भेजना भी खतरनाक हो सकता है। ऐसे मौकों पर वहीं डाक्टर को बुलाने का प्रबन्ध करना चाहिए।

जबकि रोगी को अस्पताल ले जाना ज़रूरी ही बन जाए तो फ्रैक्चरवाले भाग पर बिना स्प्लिण्ट[1] बांधे नहीं ले जाना चाहिए ताकि फ्रैक्चर की दशा और न बिगड़े। यदि स्प्लिण्ट का प्रबन्ध न हो तो सख्त गत्ते की तख्ती, बांस की खपच्ची अथवा मोटे कागज़ की कई लम्बी तह करके उनसे भी स्प्लिण्ट का काम लिया जा सकता है। लेकिन स्प्लिण्ट या और कोई चीज़ सीधे ही फ्रैक्चरवाले भाग पर नहीं बांधनी चाहिए। पहले उसपर रुई, रूअड़ या मुलायम कपड़े की गद्दी रखकर तब स्प्लिण्ट लगानी चाहिए और ऊपर से पट्टी बांध देनी चाहिए। पट्टी कभी भी सख्ती से नहीं बांधनी चाहिए क्योंकि सख्त

---

१. स्प्लिण्ट लकड़ी की बनी पतली तख्तियां होती हैं जो खास तौर पर फ्रैक्चर को ठीक करने के ही काम में लाई जाती हैं। ये फर्स्ट एड के सामान में भी मिलती हैं।

पट्टी से खून की रवानी रुक जाती है। यदि एक अंग से दूसरे अंग को बांधने की ज़रूरत पड़े जैसे दोनों टांगों को एक साथ बांधना हो अथवा बाजू को कमर के साथ बांधना हो, तो भी दोनों के बीच रूई या कपड़े की गद्दी फिट कर देनी चाहिए। स्प्लिण्ट और पट्टी बांधने के समय इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए कि चोटवाले अंग को जहां का तहां बांध दिया जाए, उसे फैलाना या सिकोड़ना अथवा ऊंचा-नीचा करना केस को खराब कर देगा।

जबकि रोगी की कमर में फ्रैक्चर हो तो उसे औंधा लिटाकर अस्पताल भेजना चाहिए। और गर्दन में फ्रैक्चर होने पर रोगी को सीधा लिटाना चाहिए। उसके सिर को कभी इधर-उधर या आगे-पीछे को नहीं करना चाहिए।

फ्रैक्चर की चिकित्सा में डाक्टर को तीन मुख्य बातें करनी होती हैं—(१) पहले वह खींचकर अथवा सरकाकर या आपरेशन द्वारा हड्डियों को अपनी जगह बिठाता है। और इस कार्य के लिए उसे एक्सरे भी करना पड़ता है, और यह कार्य प्रायः रोगी को बेहोश करके किया जाता है। (२) इस तरह से हड्डी बिठा देने के बाद प्लास्टर, स्प्लिण्ट, चौखटे, तार और पेचों द्वारा उस अंग को तब तक उसी हालत में रखा जाता है जब तक कि हड्डी पूरे तौर पर जुड़ न जाए। (३) जुड़ जाने के बाद उस भाग की पेशियों में पूरी हरकत लाने के लिए उनका उचित व्यायाम, मालिश तथा सिकाई की जाती है।

भिन्न-भिन्न स्थानों की हड्डियां जुड़ने में कुछ सप्ताह से लेकर कई मास तक ले लेती हैं। जवान आदमी की बनिस्बत एक प्रौढ़ और बूढ़े व्यक्ति की हड्डियां काफी देर से जुड़ पाती हैं।

ज़बान (जीभ) की चोट

दांतों के बीच में आ जाने पर ही ज़बान में चोट आती है। ऐसा कभी-कभी गिर जाने से भी होता है, लेकिन ज़्यादातर मिरगी के दौरे में रोगी की ज़बान दांतों के बीच में आकर कुचली-सी जाती है। ऐसी हालत में शुरू में ज़बान से काफी खून जाता है, लेकिन बहुत ज़्यादा नहीं; और फिर खून आप ही बन्द हो जाता है। इसके लिए इलाज

की भी कोई खास जरूरत नहीं होती। ऐसे व्यक्ति के घरवालों को रोगी को दौरा पड़ने के समय सावधान रहना चाहिए; और एहतियातन रोगी के दांतों में एक अच्छा बड़ा कार्क फंसा देना चाहिए।

छाती की चोट

किसी चीज़ के फट जाने की दुर्घटना से छाती की दीवार में चोट आ जाने की घटनाएं जब-तब होती ही रहती हैं। ऐसी दुर्घटनाओं में कोई पत्थर का टुकड़ा, कांच का टुकड़ा या लोहे, पीतल जैसी किसी धातु का टुकड़ा आकर छाती में लग जाता है तो वहां की त्वचा, पेशी और पसली को फोड़कर एक छेद बना देता है और यह छेद भीतर फेफड़ों के इलाके तक पहुंच जाता है।

इस प्रकार की दुर्घटना से रोगी कुछ घबराहट और सदमे की हालत में तो आ ही जाता है, लेकिन उसके लिए सबसे ज़्यादा परेशानी पैदा करनेवाली बात होती है—छाती में बने आर-पार ज़ख्म के ज़रिये भीतर हवा का जाना। हर बार सांस लेने में हवा उस छेद के ज़रिये भीतर पहुंचती है। ऐसी हालत में रोगी सांसों के लिए संघर्ष करता-सा दिखाई देता है। उसके चेहरे पर एक थकावट और चिन्ता-सी नज़र आने लगती है। जब उससे कोई बात पूछी जाती है तो रुक-रुककर एक-एक शब्द बोलता है।

ऐसी हालत में ज़ख्म पर से उखड़े हुए खाल के टुकड़े को खींचकर ज़ख्म पर फैला देना चाहिए और ज़ख्म के चारों तरफ थोड़ा वैसलीन या तैल चुपड़ देना चाहिए। खाल खींचने से ज़ख्म ढक जाता है। फिर उसपर साफ कपड़े की गद्दी रखकर पट्टी बांध देनी चाहिए। इतना कर देने पर थोड़ी ही देर में रोगी की सांस स्वाभाविक हालत में आ जाएगी। इसके बाद उसे आगे के मुनासिब इलाज के लिए अस्पताल भेज देना ज़रूरी है।

पेट पर लगनेवाली चोटें

पेट पर निम्नलिखित घटनाओं में चोटें लग जाती हैं—जैसे किसी गाय, भैंस, बैल, घोड़े, गधे अथवा खच्चर की लात लगना; लड़ाई-

दंगे में पेट पर किसीके पैर की ठोकर वैठ जाना ; खेल के मैदान में क्रिकेट या हाकी की गेंद लग जाना ; अथवा अंधेरे में किसी चीज़ का ज़ोर के साथ पेट से टकरा जाना। दरअसल इन चोटों का नतीजा इस बात पर निर्भर करता है कि चोट कितने ज़ोर से वैठी है ; कौन-से हिस्से पर चोट पहुंची है और चोट लगनेवाले भाग के नीचे जो अंग था वह किस हालत में था। अगर चोट आमाशय (मेदे) या मसाने पर पड़ती है तो बहुत हद तक यह सम्भव हो सकता है कि ये अंग फट जाएं। खास तौर पर तब जबकि आमाशय में भोजन भरा हो और मसाने में पेशाब। लेकिन जब ये अंग खाली होते हैं तब इन्हें प्रायः कोई नुकसान नहीं पहुंचता ; तब सिर्फ पेट की दीवार पर नील पड़कर ही रह जाता है। दूसरी ओर यदि किसी बीमारी जैसे मलेरिया या कालाजार के कारण तिल्ली बढ़ी हुई है तब हलके-से आघात से भी, चाहे वह पेट की दीवार पर भी कोई निशान न बना सके, तिल्ली फट सकती है जिसके फलस्वरूप तिल्ली से रक्तस्राव होकर रोगी की मृत्यु हो सकती है। इसके अतिरिक्त गम्भीर दुर्घटनाओं में, जैसे लारी, मोटर या भारी गाड़ी का पहिया पेट पर से उतर जाने पर, तत्काल मृत्यु भी सम्भव है। कभी-कभी आंतों के टुकड़े पहिये और रीढ़ की हड्डी के बीच पिस जाते हैं। कोई बड़ी शिरा या धमनी फट जाती है ; ऐसी हालत में यदि फौरन आपरेशन सम्भव हो सके तो रोगी को ज़िन्दगी बच जाने की एक क्षीण-सी आशा रहती है।

बहरहाल पेट की चोट गम्भीर हो या हलकी, उसका निदान स्वयं करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। इस सम्बन्ध में तो बाज़ मर्तबा विशेषज्ञ भी जल्दी निदान नहीं कर पाते। इसलिए सुरक्षा की दृष्टि से जल्द से जल्द रोगी को अस्पताल पहुंचा देना चाहिए ; क्योंकि यदि आपरेशन की जरूरत होती है तो रोगी का एक-एक क्षण कीमती होता है। ऐसी दशा में विशेषज्ञ ही सही निर्णय कर सकता है। रोगी को चाय या काफी अथवा दूध आदि कुछ नहीं पिलाना चाहिए।

गुप्तांगों की चोटें

किसी भी प्रकार के खेल में अथवा साइकिल की गद्दी की नोक

से या घोड़े पर कसी ज़ीन की नोक से गुसाङ्गों पर वाज़ वक्त करारी चोट बैठ जाती है। ऐसी दुर्घटना होने पर रोगी कुछ समय के लिए वेहोश हो सकता है अथवा सिर में चक्कर और आंखों के आगे अंधेरा आने से वह गिर जाता है। चुटीले स्थान पर वहुत सख्त दर्द होता है और रोगी उस अंग को पकड़े-पकड़े दर्द के मारे दोहरा हो जाता है। ऐसी हालत में उसे कुछ गरम चीज़ देना अत्यन्त लाभ-कारी होता है जैसे थोड़ी-सी ब्राण्डी या गर्म चाय। इसके बाद उस स्थान को गर्म रुई या रूअड़ से सेंक देना चाहिए और फिर काफी रुई में अच्छी तरह लपेटकर रखना चाहिए। यदि चोट अण्डकोषों में आई हो तो रूई के ऊपर लंगोट कस देना चाहिए ताकि वे नीचे न लटकें। ऐसी हालत में दो-तीन दिन तक सूजन और दर्द वना रहता है; लेकिन वाद में स्वयं घटकर सब कुछ ठीक हो जाता है। स्त्रियों के गुसाङ्गों में चोट आने के कम ही मौके होते हैं; फिर भी जब चोट आए तो ऊपर कहा गया उपचार ही करना चाहिए।

जल जाने पर

जलने की दुर्घटनाएं दो तरह के माध्यमों से होती हैं—(१) सूखी गर्मी से जलना, (२) गीली गर्मी से जलना। सूखी गर्मी से मतलब है—आग, कोई गर्म किया हुआ धातु का टुकड़ा या बर्तन; तेज़ ताकत की विजली का करेंण्ट, आसमानी विजली अथवा रगड़ की गर्मी—जैसे किसी घूमते हुए पहिये की लपेट में आ जाना या तेज़ी से सरकते हुए तार या रस्सी से भिड़ जाना; रासायनिक दाहक द्रव्यों से जल जाना—जैसे तेज़ाव, कास्टिक सोडा, पोटाश, तेज़ अमोनिया या ताज़ा बुझा चूना (कलई)। गीली गर्मी का अर्थ है—वदन के किसी हिस्से का तेज़ खौलते हुए पानी, चाय, दूध, स्टीम, तेल, तारकोल से जलना।

आग से सावधानी—यूं तो ऊपर लिखी सभी चीज़ों से जल जाना खतरनाक हो सकता है लेकिन सबसे ज़्यादा खतरनाक वात तब बन जाती है जबकि शरीर के कपड़े सूखी आग पकड़ लेते हैं। कपड़ों के आग पकड़ने की घटनाएं अक्सर रसोई करते समय महिलाओं के साथ होती

हैं। ऐसी हालत में कपड़ों में आग लगते ही अगर सावधानी वरती जाए और होश-हवास न खोए जाएं तो दुर्घटना के गम्भीर परिणामों से बचा जा सकता है। कपड़ों में आग लगने का पता चलते ही औरतें प्रायः घबराकर इधर-उधर भागने लगती हैं और इसका नतीजा यह होता है कि एक ज़रा से पल्ले में लगी आग हवा से सारे शरीर के कपड़ों में फैल जाती है। दरअसल ऐसी हालत में भागना कभी नहीं चाहिए; बल्कि उसी समय ज़मीन पर लेटकर करवटों से लुढ़कना चाहिए ताकि दबकर आग की लपटें जहां की तहां बुझ जाएं। साथ ही सामने जो कोई भी चीज़ जैसे चटाई, कम्बल, बोरी, टाट, रज़ाई आदि आए उसे अपने ऊपर लपेट लेना चाहिए।

यदि आप खुद दुर्घटना के शिकार नहीं हैं, बल्कि आपके सामने ही किसीके कपड़ों में आग लग गई है तो आपको चाहिए कि तुरन्त ही कम्बल, दरी, टेबल-क्लाथ या चादर जो चीज़ भी हाथ लगे लेकर उसके ऊपर डाल दें और उसे ज़मीन में लिटा दें ताकि आग के शोले बुझ जाएं।

व्यक्ति चाहे सूखी गर्मी से जले चाहे गीली गर्मी से, प्रायः दोनों का असर एक-सा ही होता है। दुर्घटना की गम्भीरता या हलकापन इस बात पर निर्भर करता है कि शरीर का कोई भाग कितना गहरा जल गया। गर्मी ने जितना गहरा जलाया होता है दुर्घटना उतनी ही गम्भीर बन जाती है। मामूली हालत में तो सिर्फ त्वचा लाल होकर रह जाती है, इससे आगे छाले पड़ जाते हैं और यदि आग और गहरी पैठी है तो खाल झुलसकर गहरे लाल ज़ख्म बन जाते हैं। अधिक गम्भीर दुर्घटनाओं में तो आग खाल और गोश्त को जलाकर नीचे हड्डी तक पहुंच जाती है। बहरहाल दुर्घटना चाहे जिस दर्जे की हो, थोड़ा जलने पर भी रोगी को बेहद दर्द महसूस होता है।

जलने की दुर्घटना में सबसे पहला खतरा रोगी को सदमा पहुंचने का होता है। क्योंकि जल जाना एक काफी खतरनाक दुर्घटना मानी जाती है और 'मैं जल गया हूं' यह बात उसे भारी मानसिक सदमा पहुंचाती है। इसके साथ ही ज़ख्मों का दर्द और खून के जलीय भाग (प्लाज़्मा) का जल जाना उसके सदमे की हालत को और भी बदतर

बना देते हैं। इस सदमे की हालत में रोगी बेहोश भी हो सकता है।

इस सदमे को दूर करने के लिए उसे आश्वासन दीजिए, ढाढ़स बंधाइए और यह बात उसके मन से दूर कर दीजिए कि वह किसी खतरनाक हालत में है। ऐसी हालत में उसे तेज़ प्यास भी लगती है। घूंट-घूंट करके उसे ताज़ा पानी पिलाना चाहिए। इससे रोगी को शान्ति मिलती है।

सदमे के बाद दूसरा खतरा होता है ज़ख्मों के ज़हरीले (सैप्टिक) हो जाने का। जब रोगी के ज़ख्म गहरे होते हैं तो ज़ख्म के आसपास का गोश्त निर्जीव होकर बहुत जल्दी सड़ जाता है और सड़न का ज़हर सारे शरीर में फैल सकता है। ज़ख्म में बाहर से भी ज़हरीला माद्दा घुसकर उन्हें सड़ा सकता है और रोगी की हालत खतरनाक बन सकती है। अतः ज़ख्मों के इलाज की डाक्टर द्वारा उचित व्यवस्था होनी बहुत ज़रूरी है।

रोगी की अच्छी-बुरी हालत इस बात पर भी निर्भर करती है कि उसके शरीर के कितने भाग पर आग का प्रभाव पड़ा है। एक जगह पर भले ही काफी गहरा ज़ख्म बन गया हो और वह रोगी के लिए खतरनाक साबित न हो, लेकिन आग का हलका असर ही शरीर के बड़े भाग पर पड़ गया है तो इससे रोगी मर भी सकता है। इसके अलावा यदि कहीं आग बड़े पैमाने पर लगी है और रोगी वहां कुछ देर फंसा रहा है तो धुंआ उसके लिए दमघोंट साबित हो सकता है। इस बारे में स्थिति को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। यदि रोगी को ठीक श्वास न आता हो और उसका दम घुटता-सा दिखाई दे तो 'कृत्रिम श्वास-प्रश्वास क्रिया' करनी चाहिए (कृत्रिम श्वास-प्रश्वास क्रिया का वर्णन पाठकों को पृष्ठ ४३ पर मिलेगा)।

प्रारम्भिक इलाज की बात—यदि घटना साधारण है और आग का असर छोटे-मोटे हिस्से पर ही मामूली तौर पर हुआ है—मिसाल के तौर पर वहां सिर्फ सुर्खी ही आई है, तो कोई विशेष चिन्ता की बात नहीं होती। ऐसी हालत में तो सिर्फ उस भाग पर पाउडर मल दें, सफेद वैसलीन लगा दें अथवा नारियल का तेल चुपड़ दें। और रोगी इतने से ही ठीक हो जाता है। इसके आगे यदि कहीं एक-दो

मामूली छाले भी पड़ गए हों तो कैंची को तेज़ गर्म पानी से धोकर छाले काटकर वैसलीन लगाकर पट्टी बांध देनी चाहिए और फिर सुविधानुसार एहतियात के तौर पर एक बार डाक्टर को भी दिखा देना चाहिए।

लेकिन अगर ज़ख्म गहरे हैं, छाले बड़े-बड़े पड़ गए हैं, रोगी को तकलीफ ज्यादा है तो ऐसी हालत के लिए हम पाठकों को आगाह कर देना चाहते हैं कि कभी भी घरेलू नुस्खे न इस्तेमाल करें। मोर का पंख बांध देना, या कम्बल जलाकर और तेल में मरहम बनाकर लगाना, अथवा कौड़ी फूंककर भर देना, तथा ऐसे ही किसी भी चुटकुले से इलाज न करके रोगी को जल्दी से जल्दी अस्पताल पहुंचाना चाहिए या घर पर ही डाक्टर को दिखाना चाहिए। अब तक अपने चिकित्साकाल में हमने इन चुटकुलों और घरेलू इलाज के चक्कर में अनेक रोगियों की दुर्दशा होती देखी है। अब तो सौभाग्य से ऐसी अच्छी और असरदार औषधियों का आविष्कार हो गया है कि काफी बुरी तरह जला हुआ मरीज़ भी इन औषधियों से ठीक हो जाता है। एण्टीबायटिक औषधियां ज़हरीले माद्दे को तुरन्त रोक देती हैं।

जब रोगी अधिक जल गया हो तो उसके कपड़ों को उतारने की भी कोशिश नहीं करनी चाहिए। क्योंकि अक्सर नीचे के वस्त्र ज़ख्मों के साथ चिपक जाते हैं और उन्हें छुटाने की कोशिश में ज़ख्मों की खाल उपड़ती है तथा रोगी को बेहद तकलीफ होती है। यह काम डाक्टर अच्छी तरह कर सकता है। डाक्टर के आने तक अथवा अस्पताल पहुंचने तक रोगी को अच्छी तरह कम्बल से ढककर गर्म रखना चाहिए।

प्राकृतिक चिकित्सकों का दृष्टिकोण

प्राकृतिक चिकित्सक जले हुए का इलाज सिर्फ पानी से करते हैं। रोगी के जलते ही वे जले हुए भाग पर पानी डालना प्रारम्भ कर देते हैं अथवा कपड़े की मोटी गद्दी पानी में भिगोकर जले हुए स्थान पर रख देते हैं और बराबर उसे पानी से तर करते रहते हैं। उनका कथन है कि जले हुए स्थान पर यदि फौरन ही पानी डाला जाए अथवा उसे पानी में डुबो दिया जाए तो छाले पड़ने का कोई सवाल ही नहीं

पैदा होता। छाले पड़ने का सिद्धान्त ठीक चूल्हे में रोटी फूलने जैसा सिद्धान्त है। अतः इतनी गर्मी ही नहीं बढ़ने देनी चाहिए कि शरीर का जलीय अंश उबलकर छाला बन जाए। बहुत बार स्त्रियां रोटी पकाते समय हाथ जल जाने पर गीला आटा लगा देती हैं और यह देखा जाता है कि इस उपचार से तकलीफ ठीक हो जाती है। हमारे एक प्राकृतिक चिकित्सक मित्र का चार वर्ष का बच्चा खौलते हुए दूध से जल गया और पीड़ा से छटपटाने लगा था। वे उसपर डेढ़ घण्टे तक पानी डालते रहे और जले हुए भाग को भीगी हुई गद्दियों से तर रखा, डेढ़ घण्टे पश्चात् बच्चा आराम से सो गया। जलन की तकलीफ से इतनी जल्दी मुक्त होना वस्तुतः आश्चर्य की बात है। अगले दिन बच्चा उन्होंने परीक्षार्थ मुझे दिखाया। उसकी हालत बिलकुल ठीक थी।

पानी में डूबना

पानी में डूब जाने पर अधिकांश रूप में श्वास-प्रश्वास रुक जाने के कारण दम घुटकर व्यक्ति की मृत्यु होती है। इसके अतिरिक्त पानी में शरीर की गर्मी खिच जाती है। डूबने का सदमा और भय भी बहुत बार मृत्यु का कारण बन जाते हैं। यदि डूबनेवाला जल्दी ही पानी में से निकाल लिया गया है तो पहले कृत्रिम श्वास-प्रश्वास क्रिया द्वारा उसका श्वास चालू करना चाहिए। एक बार को यदि डूबनेवाले में जीवन के कुछ भी लक्षण न मिलते हों तो भी कृत्रिम श्वास-प्रश्वास क्रिया द्वारा श्वास चालू करने का प्रयत्न अवश्य करना चाहिए। कई बार निराश अवस्थाओं में भी यह क्रिया जीवनदायिनी साबित होती है।

डूबनेवाले व्यक्ति के लिए निम्नलिखित तरीके की व्यवस्था तुरन्त करनी चाहिए :

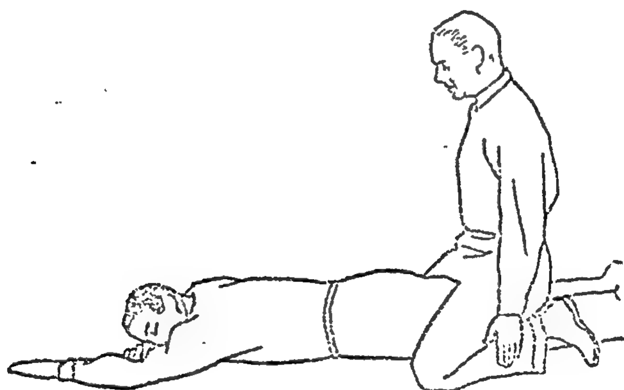
फौरन किसी आदमी को डाक्टर को बुलाने के लिए भेज देना चाहिए। फौरन कम्बल और सूखे कपड़े मंगाने चाहिए। लेकिन कृत्रिम श्वास-प्रश्वास क्रिया का प्रयोग रोगी के पानी से निकलते ही तुरन्त शुरू कर देना चाहिए। रोगी को ऐसे स्थान पर लिटाना चाहिए जहां खूब हवा हो। जब रोगी का श्वास-प्रश्वास चालू करने में सफलता मिल जाए तो फिर उसके शरीर में गर्मी लानी चाहिए

और फिर उसके रक्त-संचार को तेज़ करना चाहिए।

शेफर की कृत्रिम श्वास-प्रश्वास विधि

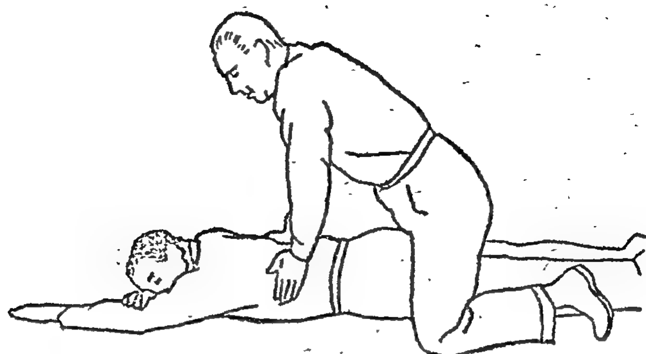
रोगी को पेट के बल (औंधा) लिटा दीजिए (यदि उसके पेट, छाती या गले के कपड़े सख्त हों तो उन्हें ढीला कर देना चाहिए)। रोगी का सिर एक ओर घुमा देना चाहिए (यदि ज़मीन पथरीली या धूल-भरी हो तो रोगी की एक बांह कोहनी पर से मोड़कर उसपर उसका सिर घुमाकर रखें) ताकि नाक और मुख ज़मीन से मिलकर बन्द न हों। यदि मुंह में झाग या बलगम हो तो अंगुली पर रूमाल लपेटकर उसे साफ कर देना चाहिए।

अब उपचारक को रोगी के ऊपर उसकी दोनों जांघों को अपने घुटनों के बीच में लेकर अपने घुटनों और पंजों पर बैठना चाहिए (देखिए चित्र ८)।



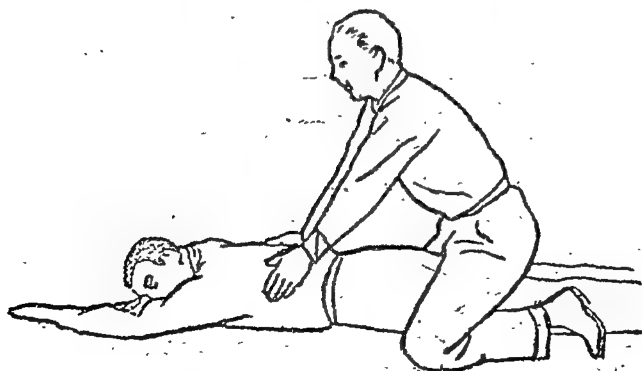
चित्र ८

इसके बाद उपचारक को अपनी दोनों हथेलियां रोगी की कमर पर टेककर उसको दबाना चाहिए। हथेलियां इस तरह टेकी जाएं कि अंगूठा फैलकर आखिरी पसली को छूता रहे। हथेलियां न बहुत बाहर की ओर रहें न भीतर की ओर। रीढ़ की हड्डी से उनका फ़ासला दो-



चित्र ९

तीन इंच का होना चाहिए। दबाते समय भुजाएं बिलकुल सीधी रहनी चाहिए, कोहनी पर से मुड़ने न पाएं। कन्धों से लगाकर हथेली तक पूरी भुजा एक सीधी रेखा में रहे। ऐसा करने के लिए उपचारक को ऊपर उठकर अपनी भुजाओं के बल रोगी के थोड़ा ऊपर झुकना होगा (देखिए चित्र ९)। इस हालत में दबाव डालने के लिए दरअसल उपचारक को पेशियों का ज़ोर नहीं लगाना चाहिए, अपितु अपने शरीर के भार से ही दबाव डालना चाहिए। इस तरह दबाव



चित्र १० क

पड़ने से पेट की पेशियां (खास तौर पर महाप्राचीरा) दबेगीं जिसके ज़रिये फेफड़ों की श्वास-नलिकाओं से हवा बाहर आएगी। यहां उपचारक को यह भी ध्यान रखना होगा कि दबाव रोगी की शक्ति से ज़्यादा न पड़ने पाए। इस दबाव को तीन से पांच सेकंड तक रखना चाहिए।



चित्र १० ख

इसके बाद हाथ ढीले करके दबाव हटा लेना चाहिए (देखिए चित्र १० क) लेकिन यह ध्यान रहे कि हाथ कमर पर से नहीं हटेंगे। सिर्फ थोड़ा पीछे की ओर झुककर हाथों पर से शरीर का भार ही हटा लेना होगा (देखिए चित्र १० ख)।

इस तरह दबाव हटने से बाहर से हवा भीतर फेफड़ों में को खिचेगी। हटे दबाव की हालत में दो-तीन सेकंड तक रहना चाहिए और फिर दबाव डालना चाहिए। इस तरह दबाव डालने और हटाने की क्रियाएं एक मिनट में १०-१२ बार की रफ्तार से करनी चाहिए।

कृत्रिम श्वास-प्रश्वास की यह क्रिया तब तक जारी रखनी चाहिए जब तक कि रोगी को स्वाभाविक ढंग पर श्वास चालू न हो जाए। एक घण्टे तक तो ज़रूर ही इस क्रिया को चालू रखना चाहिए। लेकिन दो-दो घंटे यह क्रिया करने के बाद भी स्वाभाविक श्वास-प्रश्वास चालू होते देखा गया है। बहरहाल डाक्टर के आने तक तो यह प्रयत्न ज़रूर जारी रखना चाहिए।

श्वास-प्रश्वास चालू हो जाने पर भी जब तक पूरे तौर पर रोगी अच्छी तरह श्वास न लेने लगे तब तक कृत्रिम श्वास-प्रश्वास क्रिया जारी रखें। श्वास ठीक होने के पश्चात् सुविधानुसार रोगी को कोई गर्म पेय जैसे चाय, काफी या गर्म पानी में थोड़ी ब्राण्डी डालकर पिलानी चाहिए। किसी भी हालत में रोगी को अभी बैठने या खड़े होने की इजाज़त नहीं देनी चाहिए। बल्कि उसे कम्बल या रज़ाई ओढ़ाकर धीरे-धीरे उसके हाथ-पैर और बदन मलना और सहलाना चाहिए ताकि रक्त-संचार को उत्तेजना मिले।

यदि रोगी के शरीर में गर्मी की कमी अनुभव हो तो उसके पास

आग रखनी चाहिए अथवा रबड़ की बोतल में गर्म पानी भरकर उसके पेट, छाती और बगलों को गर्मी पहुंचानी चाहिए और यह कोशिश करनी चाहिए कि रोगी सो जाए। स्वाभाविक श्वास-प्रश्वास चालू हो जाने के बाद भी रोगी के श्वास की ओर से बेफिक्र नहीं रहना चाहिए; बल्कि उसके श्वास के ऊपर निगाह रखनी चाहिए। बहुत बार श्वास दोबारा फेल होने लगता है। अगर ऐसी नौबत आए तो फिर 'कृत्रिम श्वास-प्रश्वास क्रिया' शुरू कर दें।

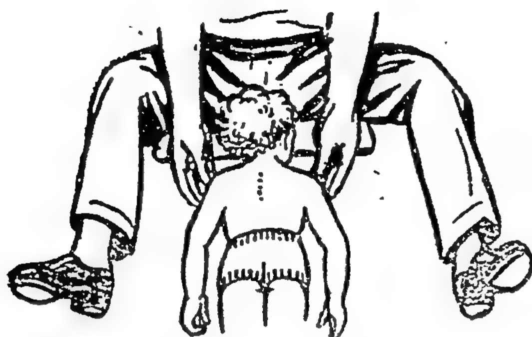
बच्चों के केस में हागर नेल्सेन की विधि

पांच वर्ष से अधिक उम्रवाले बच्चों के केस में श्वास-प्रश्वास क्रिया चालू करने के लिए 'हागर नेल्सेन' की विधि अपनाई जाती है। इस विधि के अनुसार बच्चे को उसी प्रकार उलटा लिटाना चाहिए। और दोनों हाथों की अंगुलियों के पोरुओं से कन्धों के फलकों पर दबाव डालना और हटाना चाहिए (देखिए चित्र ११)। दबाव डालने और हटाने की क्रिया एक मिनट में प्रायः १२ बार करनी चाहिए।

यदि बच्चे की उम्र पांच वर्ष से कम हो तो उसके हाथ बगलों के साथ फैला देने चाहिए और साथ ही उसके माथे के नीचे कोई गुदगुदी-सी चीज़ रख देनी चाहिए। फिर अंगुलियां कन्धे के नीचे लगाकर अंगूठे कन्धे के ऊपर रखने चाहिए। अब अंगूठों से कन्धों के फलक दबाने चाहिए (ताकि श्वास बाहर निकले)। दबाव दो सेकंड तक डालें। फिर दो सेकंड के लिए नीचे लगी अंगुलियों से कन्धों को ऊपर उठाएं (ताकि श्वास भीतर खिचे)। इन दोनों क्रियाओं को एक मिनट में लगभग १५ बार करना चाहिए। (देखिए चित्र १२ क, ख)।



चित्र ११



चित्र १२ क



चित्र १२ ख

आंख में किसी बाहरी वस्तु का गिरना

अक्सर आंख में रेत, कोयला, मिट्टी, लकड़ी, लोहे के ज़र्रे गिर जाते हैं। कभी-कभी पलक का बाल भी टूटकर आंख में पड़ जाता है और ऐसी सूरत में बड़ी बेचैनी और तकलीफ पैदा हो जाती है। यदि जल्दी ही वह ज़र्रा आंख से न निकले तो बहुत बार आंख की कोमल त्वचा में गड़कर आंख को सुजा देता है।

इस तरह आंखों में कोई ज़र्रा गिर जाने पर कभी भी आंखों को मलना नहीं चाहिए। रोगी का मुंह रोशनी की तरफ करके उसको

किसी स्टूल, कुर्सी या किसी ऊंची जगह पर बिठा दीजिए। फिर उसका निचला पलक नीचे की ओर खींचकर देखिए ; यदि कोई बारीक ज़र्रा दिखाई दे और आंख में गड़ गया हुआ न मालूम पड़े तो रूमाल के एक कोने को ऐंठकर और साफ पानी में भिगोकर अथवा साफ रुई की मोटी बत्ती पानी में गीली करके या ब्लाटिंग पेपर के टुकड़े की नोक से उसे निकाल देना चाहिए। लेकिन अगर ज़र्रा आंख में कुछ गड़ा हुआ हो और इस तरकीब से न निकले तो फिर रोगी की आंख बन्द कराके उसपर थोड़ी रुई रखकर पट्टी बांध देनी चाहिए और डाक्टर के पास भेज देना चाहिए।

जबकि आपको कोई ज़र्रा न दिखाई दे और शुबहा यह हो कि वह ऊपर की पलक में चिपका हुआ है, तो रोगी को कहिए कि आंख पानी के भीतर खोले और मीचे। अथवा रोगी को लिटाकर अंगूठे और पहली अंगुली से उसकी पलकें चौड़ी करके रुई के फाहे से साफ पानी डालकर आंख को धो दीजिए। या ऐसा करना चाहिए कि ऊपर की पलक को थोड़ा ऊपर उठाकर नीचे की पलक के बाल ऊपर की पलक के नीचे करके छोड़ दीजिए ; ये बाल आंख के भीतर झाड़ू-सी लगा देंगे और ज़र्रा निकल आएगा। इस क्रिया को कई बार दुहराया भी जा सकता है। लेकिन जब यह उपाय कारगर न हो तो फिर रोगी को डाक्टर के पास ही भेज देना चाहिए।

लेकिन किसी कारण से डाक्टरी मदद फौरन न मिल सकती हो तो फिर रोगी को रोशनी की ओर मुंह करके बिठाइए और आप खुद उसके पीछे खड़े हो जाइए। उसका मुंह ऊपर को उठाकर सिर अपनी छाती से टिका लीजिए। एक दियासलाई की तीली लेकर उसे लम्बाई में ऊपर की पलक की जड़ में लगाइए और आगे से पलक को पकड़कर दियासलाई की तीली पर उलट दीजिए। रोगी से नीचे की ओर देखने को कहिए (जैसाकि चित्र १३ में दिखाया गया है)। फिर जैसाकि ऊपर बताया गया है, रूमाल के कोने, ब्लाटिंग पेपर अथवा रुई की बत्ती से ज़र्रे को निकालिए।

जब कोई दाहक चीज़ जैसे क्षार (खार) या तेज़ाब आंख में पड़ जाने का शक हो तो रोगी की आंख को पानी के अन्दर बार-बार



चित्र १३

खुलवाना-मिचवाना चाहिए। इससे तेजाब या खार घुलकर हलका पड़ जाता है। फिर आंख बन्द कराके उसपर रुई की मुलायम गद्दी रखकर पट्टी बांध देनी चाहिए और रोगी को जल्दी डाक्टर के पास ले जाना चाहिए।

ड्रेसिंग

ड्रेसिंग के माने हैं ज़ख्म को ढकना और उसमें दवा वगैरा लगाना। किन्तु यहां हमारा मतलब आपको कोई बाकायदा ड्रेसिंग की शिक्षा देना नहीं है, अपितु सिर्फ़ यह समझाना है कि आपत्कालीन समय में अथवा कहीं तात्कालिक आवश्यकता होने पर आप ज़ख्म को ड्रेसिंग

किस तरह करें। उसके आगे की देखभाल फिर डाक्टर का काम होगा। वस्तुतः ड्रैसिंग का उद्देश्य होता है ज़ख्म की रक्षा—अर्थात् ज़ख्म का खून वहना वन्द हो सके; दूसरे ज़ख्म पर और कोई चोट या आघात न पहुंचे और तीसरे उसमें वाहर से और कोई जहरीले कीटाणु न पहुंच पाएं।

ड्रैसिंग करते समय आपने डाक्टरों या ड्रैसरों को देखा होगा कि वे एक वहुत छीदे बुने हुए कपड़े का टुकड़ा, पीली या लाल दवा में भिगोकर ज़ख्म पर रखते हैं। इस कपड़े को 'गौज़' कहते हैं। तो जब कभी आपको कोई आपत्कालीन ड्रैसिंग करनी हो तो यदि इत्तिफाक से गौज़ आपके पास है (वहुत-से व्यक्ति ऐसी ज़रूरी चीज़ें शौकिया अपने पास रखते हैं) तो ठीक है, अन्यथा धोवी के यहां का धुला हुआ कोई भी वारीक साफ कपड़े का टुकड़ा, मलमल या वायल, या धुली हुई पुरानी धोती इस काम के लिए इस्तेमाल कर सकते हैं। लेकिन वैज्ञानिक दृष्टि से वह कपड़ा साफ नहीं माना जाएगा। उसके लिए यह ज़रूरी है कि आप उस कपड़े के टुकड़े को पानी में डालकर आग पर उवलवा लें, तभी उसे निचोड़कर और ठण्डा करके ज़ख्म पर लगाएं। इस तरह उवालने से सव तरह के कीटाणु और उनका ज़हर नष्ट हो जाता है। यह सावधानी इसलिए ज़रूरी होती है कि ज़ख्म पर कोई भी चीज़ लगने पर वह खून में मिलकर सारे शरीर में फैल सकती है। विना उवाले हुए कपड़े के लिए आप कैसे कह सकते हैं कि उसमें किसी तरह के कीटाणुओं का असर नहीं है। क्योंकि ये कीटाणु तो ईश्वर की तरह सर्वव्यापी होते हैं। वहुत वार ऐसी ही असावधानियों से टिटेनस, ज़हरवाद, पोलियो तथा दूसरे रोग होते देखे जाते हैं। साथ ही आपको यह सावधानी भी वरतनी चाहिए कि ज़ख्म को विना सावुन से हाथ धोए कभी न छुएं। आपके हाथ भी तो गन्दे हो सकते हैं और ज़ख्म में कीटाणु पहुंचा सकते हैं। ज़ख्म धोने की ज़रूरत हो तो उवाले हुए पानी को ठण्डा करके उससे धोना चाहिए। तात्कालिक चिकित्सा के समय ज़ख्म में दवा भरने की वात आपको नहीं सोचनी चाहिए। वह काम आगे डाक्टर करेगा। वहुत-से लोग टिंचर (टिंचर आयोडीन) या स्प्रिट को ज़ख्मों की आम दवा समझ-

कर उनपर लगा देते हैं। लेकिन खुले ज़ख्म पर टिंचर या स्प्रिट कभी नहीं लगानी चाहिए, क्योंकि ज़ख्म पर ये दोनों चीजें इस कदर लगती हैं कि मरीज़ के लिए नाकाबिले-बरदाश्त हो जाती हैं। कई बार तो ज़ख्म इनसे सूजकर खराब हो जाते हैं। हां, यह किया जा सकता है कि ज़ख्म के चारों तरफ की जिल्द को आप स्प्रिट के फाहे से साफ कर दें; स्प्रिट में वाकई कीटाणुओं को नष्ट कर देने की ताकत होती है। इसके अतिरिक्त और कोई भी घरेलू दवा या किसीकी बताई हुई कोई चीज़ खुले ज़ख्म पर नहीं लगानी चाहिए। ज़ख्म को कभी रुई से नहीं ढकना चाहिए, क्योंकि दोबारा जब ज़ख्म को साफ करने के लिए खोला जाएगा तो रुई के रेशे उसमें बुरी तरह चिपके हुए मिलेंगे, और उनको छुटाने में मरीज़ को बेहद तकलीफ होगी। कोई चिपकने-वाला प्लास्टर या बत्ती के मरहम का फाया भी ज़ख्म पर नहीं लगाना चाहिए, क्योंकि इनके छुटाने में भी मरीज़ को बहुत पीड़ा होती है। ज़ख्म में कोई दवा दरअसल उसे भरने के लिए नहीं लगाई जाती। ज़ख्म तो कुदरती तौर पर खुद भरता है। दवाइयां सिर्फ इसलिए लगाई जाती हैं कि वह साफ रहे और उसमें मवाद पैदा न हो।

अतः तात्कालिक उपचार के रूप में जैसाकि ऊपर बताया गया है, उबाला हुआ कपड़ा निचोड़कर ज़ख्म को ढक देना चाहिए और उस कपड़े पर साफ रुई की गद्दी बनाकर रख दें और ऊपर से पट्टी बांध दें। इसके आगे की देखभाल डाक्टर का काम है।

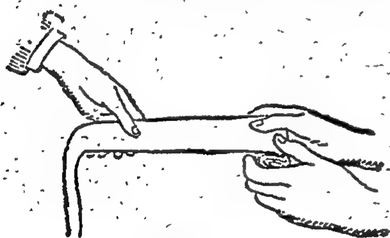
पट्टी बांधना

किसी चुटीले भाग पर पट्टी इसलिए बांधी जाती है कि यदि वहां तख्तियां (स्प्लिण्ट) लगाई गई हैं तो वे यथास्थान रहें। यदि ज़ख्म की ड्रेसिंग की गई है तो रुई और कपड़ा अपनी जगह से न हट सकें। चोट खाया हुआ भाग हिल-डुल न सके। चुटीले भाग की पेशियों और रक्त-वाहिनियों को सहारा मिले। ज़ख्म से बहता हुआ खून रुक सके, सूजन न बढ़े और मौजूदा सूजन घट सके। तथा रोगी को एक से दूसरे स्थान पर ले जाने में आसानी हो।

साधारण रूप से पट्टियों को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है—

(१) लपेटी जानेवाली पट्टियां, (२) किसी अंग को लटकानेवाली पट्टियां।

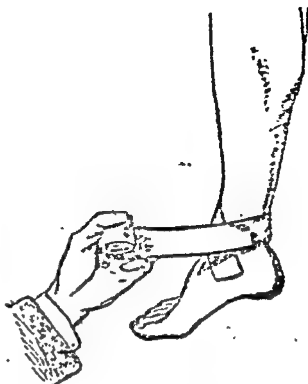
१. लपेटी जानेवाली पट्टियां—ये पट्टियां साफ, बारीक और कुछ छीदे बुने हुए कपड़े की होनी चाहिए। बाजार में अंग्रेजी दवा बेचनेवालों के यहां ये पट्टियां खास तौर पर बनी-बनाई मिलती हैं। लेकिन किसी दुर्घटना के समय वहां पर पट्टी मौजूद हो यह बात तो जरूरी नहीं है। हां, अगर उनके मिलने का स्थान नजदीक हो तो फौरन बनी-बनाई पट्टियां मंगा लेनी चाहिए। वरना उनके स्थान पर घर की किसी साफ धुली हुई (भले ही पुरानी हो) धोती या सूती साड़ी में से लम्बाई में कपड़ा फाड़कर तुरन्त पट्टी तैयार कर लेनी चाहिए। धोती या साड़ी की किनारी छोड़कर पट्टी हमेशा बीच में से लेनी चाहिए। अगर भुजा या कोहनी पर बांधनी हो तो आम तौर पर २$\frac{1}{2}$ इंच चौड़ी और लगभग ६-७ गज लम्बी पट्टी लें। टांग के लिए २$\frac{1}{2}$ इंच चौड़ी और ८-१० गज लम्बी। जब पट्टी छाती या पेट पर बांधी जाए तो उसकी चौड़ाई ५ इंच और लम्बाई १० गज तक अपेक्षित होती है। यदि पट्टी छोटी पड़े तो उसे सुई-डोरे या मशीन से सीकर जोड़ लेना चाहिए। जोड़ने के लिए उसमें गांठ कभी न लगाएं। यदि सीने की सुविधा भी न हो तो एक पट्टी जहां खतम हो उसके ऊपर से दूसरी पट्टी चालू करें; उस स्थान पर पट्टी के दो लपेट डाल दें। चुटीले स्थान पर पट्टी को बांधने से पहले पट्टी की तह कर लेनी चाहिए। (जैसा-कि चित्र १४ में दिखाया गया है)। इस तरह तह की हुई पट्टी को बांधने में बहुत आसानी रहती है। तह करने के लिए अलबत्ता दूसरे आदमी की जरूरत होती है। लेकिन यह जरूरत पट्टी का एक सिरा किसी चीज में बांधकर भी रफा की जा सकती है।



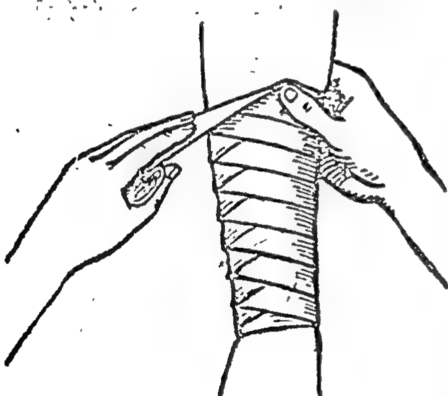
चित्र १४

लपेटनेवाली पट्टी बांधते समय पहले बाजू या टांग, जिस अंग

पर भी पट्टी बांधनी है, को सीधा कर लेना चाहिए। लेकिन इस बात का ध्यान रहे कि ऐसा करने में रोगी को तकलीफ न हो। इसके बाद पट्टी बांधने की शुरुआत चित्र में दिखाए अनुसार करनी चाहिए (देखिए चित्र १५)। फिर इसे लपेटते हुए आगे बढ़ना चाहिए ताकि वह हिस्सा ढकता चला जाए। पट्टी बांधने का शुरुआत उस अंग के एक सिरे से करनी चाहिए। वहां पट्टी को काफी कसके बांधना चाहिए। लेकिन जैसे-जैसे पट्टी आगे चोट की तरफ बढ़ती जाए लपेट अपेक्षाकृत ढीले देने चाहिए, और अगला लपेट पिछले लपेट के लगभग $\frac{1}{3}$ भाग को ढककर देना चाहिए। यह हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि कोई जगह उघड़ी न रह जाए (देखिए चित्र १६), वरना वहां सूजन बढ़कर पट्टी को खिसका देगी। जब अंग की मोटाई शुरू हो जाए तो लपेट कुछ मोड़कर देना चाहिए (जैसाकि चित्र १६ में दिखाया गया है)।

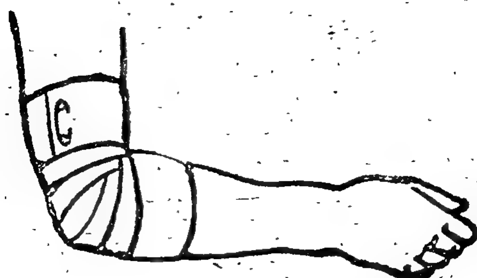


चित्र १५

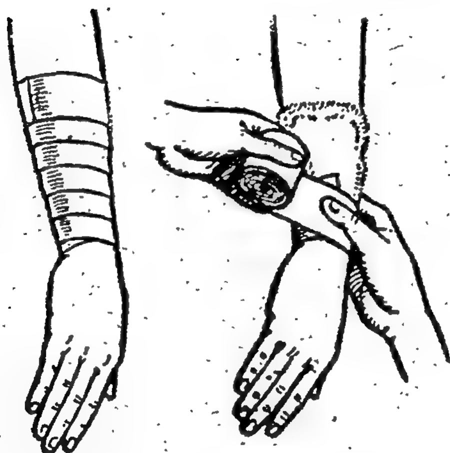


चित्र १६

जब सिर पर पट्टी बांधनी हो तो पहले बालों में अच्छी तरह कंघी करके उन्हें जमा देना चाहिए ताकि वे एकसार हो जाएं और पट्टी का दबाव कहीं कम और कहीं ज्यादा न पड़े। जब पट्टी सिर्फ किसी हिस्से के सहारे के लिए इस्तेमाल की जा रही हो अथवा कहीं

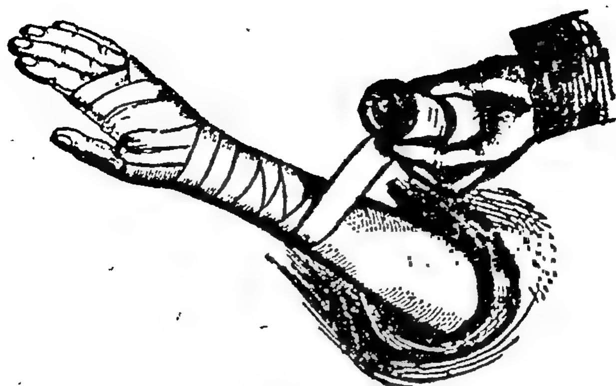


चित्र १७ क



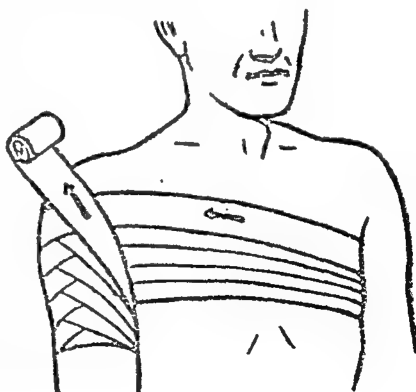
चित्र १७ ख

सिर्फ ढकने-भर का काम ही पट्टी से लेना हो तो किसी भी हालत में वहां सख्त लपेट नहीं देने चाहिए वरना उस स्थान का रक्त-संचार रुककर काफी खरावी पैदा कर सकता है। मिसाल के तौर पर हड्डी टूट गई है और वहां आपको पट्टी बांधनी है। तो जब तक पट्टी ढिलाई से नहीं लपेटी जाएगी, वह स्थान सूजकर पट्टी उसमें गड़ने लगेगी। साथ ही यदि वह अंग लटकता रहेगा तव तो सूजन और भी जल्दी बढ़ जाएगी। इस-लिए हड्डी टूटने की दशा में अथवा ऐसी ही किसी दूसरी गम्भीर चोट में चुटीले स्थान के आसपास पट्टी ढीली ही रखनी चाहिए। बंधी



चित्र १७ ग

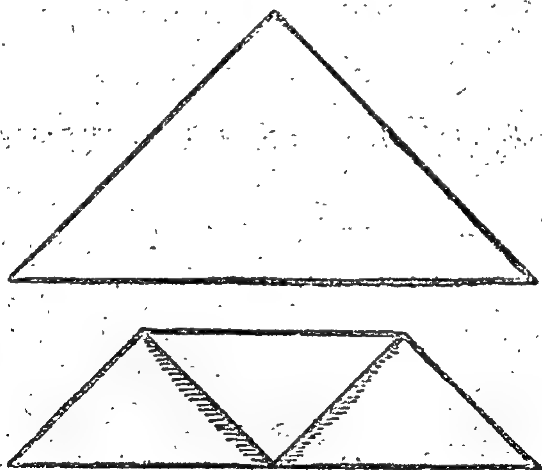
हुई पट्टी सख्त है अथवा उससे रक्त-संचार में कोई वाधा पड़ रही है, इस बात की परीक्षा भी कर लेनी चाहिए। इसके लिए नाखूनों को दवाकर देखिए—नाखून दवाने पर सफेद पड़ जाते हैं और दवाव हटाते ही फिर सुर्ख हो जाते हैं। लेकिन यदि दवाव हटने पर सुर्खी वहुत धीरे-धीरे वापस आए तो समझ लेना चाहिए कि पट्टी या स्प्लिण्ट सख्त वंध गई है और उसे तुरन्त ही ढीला कर देना चाहिए। पट्टी के अन्त में उसका सिरा वीच से फाड़कर दोनों सिरों को आपस में गांठ लगा देनी चाहिए; लेकिन गांठ ऐसी जगह लगानी चाहिए कि लेटने या करवट लेने पर मरीज़ के किसी हिस्से में चुभे नहीं। गांठ के स्थान पर सेफ्टीपिन लगाकर भी पट्टी को टिकाया जा सकता है।



चित्र १७ घ

पट्टी का कपड़ा कभी भी मोटा नहीं होना चाहिए क्योंकि उसका वज़न चोट पर प्रायः बरदाश्त नहीं होता।

२. लटकानेवाली पट्टियां—ये अधिकांश रूप में बांह में चोट आने पर उसे लटकाने के लिए काम में आती हैं। इन पट्टियों में बांह को इसलिए रखा जाता है कि नीचे लटकने पर चोट में सूजन बढ़ न जाए और बांह इधर-उधर हिलने से चोट और खराब न हो जाए। खास तौर पर जब हड्डी टूट जाती है तब तो बांह को मोड़कर पेट या छाती के सहारे ही लटकाना पड़ता है। यदि बांह, हथेली, अंगूठे या अंगुली में कोई ज़ख्म बन गया हो या ये भाग थोड़े-बहुत अंशों में कट गए हों तब भी नीचे लटकने पर खून ज़्यादा बहता है। उस समय भी बांह को मोड़कर पट्टी में लटकाना ही उचित रहता है। इन लटकानेवाली पट्टियों को अंग्रेज़ी में 'स्लिंग' कहते हैं।



चित्र १८

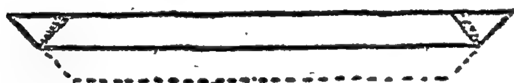
ये पट्टियां दरअसल त्रिकोणाकार (तिखूंटी) तैयार की जाती हैं (देखिए चित्र १८)। इसके लिए हो सके तो तिखूंटा कपड़ा ही काट लें, अथवा चौकोर कपड़ा काटकर उसके पहले और तीसरे कोने को मिलाकर तह कर लेनी चाहिए। इस तरह एक त्रिकोणाकार पट्टी

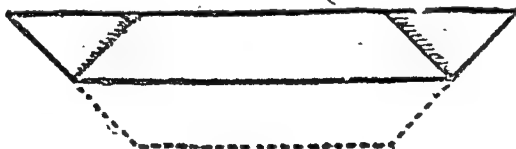


चित्र १६ क



चित्र १६ ख





चित्र २०

तैयार हो जाती है। पट्टी जितनी नीची लटकानी हो कपड़ा उसी अनुमान से काटना चाहिए। बांह लटकानेवाली पट्टी को फिट

बांधने के लिए लम्बाई में पट्टी की एक खूंट गले के चारों ओर डाल दीजिए (देखिए चित्र १६ क)। पट्टी की चौड़ाईवाली नोक अथवा शिखा बगल की तरफ रहनी चाहिए। बांह पेट से सटते हुए पट्टी पर हो। फिर लम्बाईवाले दूसरे सिरे को गलेवाले सिरे से बांध देना चाहिए। बांह को कोहनी की अपेक्षा कुछ ऊंचा रखना चाहिए। एक बार पट्टी बंधने के बाद बांह के भार से प्रायः पट्टी ढीली होकर कुछ नीचे लटक जाती है। यदि ऐसा हो तो गांठ खोलकर उसे कुछ ऊपर कर देना ठीक होता है। गांठ कड़ी लगानी चाहिए ताकि दोबारा ढिलाई न आए। शिखा को मोड़कर पट्टी के साथ पिन से टांक देना चाहिए। यदि पट्टी की चौड़ाई कम करनी हो तो उसकी दो-तीन तह बनाई जा सकती हैं (देखिए चित्र २०)।

शरीरगत रोग (परिचय और सावधानियां)

बुखार

'बुखार' एक आम तौर पर इस्तेमाल किया जानेवाला शब्द है जिसके माने होते हैं—शरीर की गर्मी बढ़ जाना। स्वस्थ हालत में सामान्य रूप से एक जवान आदमी के शरीर की गर्मी थर्मामीटर के मुताबिक ९८·६° फारनहाइट होती है। इसे 'नार्मल टैम्परेचर' (प्राकृतिक गर्मी) कहा जाता है। यह गर्मी थर्मामीटर को रोगी के मुंह में रखकर मालूम की जाती है। बुखार होने पर यह गर्मी नार्मल से बढ़कर १०५° या १०६° तक और कभी-कभी इससे भी अधिक पहुंच जाती है। बुखार की हालत में रोगी का बदन गर्म हो जाता है। भौंह के ऊपर और गर्दन के पिछले हिस्से को छूकर गर्मी का अनुभव अच्छी तरह किया जा सकता है।

बुखार दरअसल खुद कोई बीमारी नहीं है, बल्कि किसी बीमारी का एक लक्षण-मात्र होता है। इसके चिह्न ये होते हैं—जैसे त्वचा का गर्म, खुश्क और सुर्ख हो जाना, नब्ज़ की रफ्तार तेज़ हो जाना, सांस की चाल में तेज़ी आ जाना, सर्दी मालूम पड़ना, बेचैनी होना, तबियत गिरना, जी मिचलाना या कभी-कभी कै होना, दस्त होना, सिरदर्द होना;

ज्यादा बुखार में गफ्लत और बकवास भी होती है।

बुखार के जरिये दरअसल प्रकृति इस बात की सूचना देती है कि शरीर पर रोग का हमला हुआ है। इसलिए बुखार को कोई बुरी चीज नहीं कहा जा सकता; सचमुच बुरी चीज़ तो वह बीमारी होती है जिसकी वजह से बुखार पैदा होता है। वैज्ञानिकों ने बुखार की एक और दिलचस्प व्याख्या की है—'शरीर में जब रोग के कीटाणुओं का हमला होता है तो इस हमले को रोकने और विफल करने के लिए हमारा शरीर भी कुदरती तौर पर तैयारी करता है। इस हमले की तुलना हम ठीक किसी देश पर होनेवाले हमले से कर सकते हैं। जब कोई देश या राजा हमला करनेवालों से भिड़ने जाता है तो सिपाही भेजता है; घुड़सवार भेजता है, गोला-बारूद भेजता है; सेना के खाने के लिए रसद भेजता है, जासूस लगाता है और तरह-तरह की तैयारियां करता है। इसी तरह शरीर खून के सफेद कणों (दानों) को ज्यादा से ज्यादा तादाद में तैयार करके कीटाणुओं से लड़ने और उन्हें परास्त करने भेजता है। शरीर की और भी बहुत-सी धातुएं अपना काम तेज़ी से करने लगती हैं और इन कार्य-कलापों से जो गर्मी बढ़ती है उसे ही बुखार कहते हैं।'

कई रोगों के कीटाणु तो बुखार में शरीर की बढ़ी हुई गर्मी से ही मर जाते हैं।

अक्सर बुखार उतरने से पहले काफी ऊंचा पहुंच जाता है और फिर कभी तेज़ी से नीचे गिरता है और कभी आहिस्ता-आहिस्ता उतरता है। जो हो, बुखार का ज्यादा बढ़ना इस बात का सबूत होता है कि बीमारी गम्भीर है; इसलिए इस हालत में लापरवाही न दिखाकर फौरन डाक्टर को बुलाने का इन्तजाम करना चाहिए।

आजकल आम तौर पर पढ़े-लिखे लोगों को यह आदत हो गई है कि वे बुखार की परेशानी नहीं बर्दाश्त करना चाहते और फौरन कोई न कोई दवा खाकर बुखार से छुट्टी पा लेना चाहते हैं। दूसरी ओर आजकल 'एस्प्रिन' पर बनी अनेक औषधियों का ऐसा प्रचार बढ़ रहा है कि हरएक पंसारी और पनवाड़ी की दुकान पर मिलने लगी हैं। सिनेमा में, अखबारों में, बसों में, चौराहों पर, और पोस्टरों द्वारा दर्द और बुखार

को रोकनेवाली इन दवाओं का इतना विज्ञापन है कि जनता के दिमाग पर ये दवाइयां छा गई हैं। लेकिन सच तो यह है कि इधर बुखार हुआ और इधर इन दवाओं की गोली खा लेना कोई अच्छी आदत नहीं है। बहुत बार बुखार को रोक देने या कम कर देने के माने हैं कि आपने शरीर के बचाव पक्ष को ही कमजोर कर दिया। इसलिए बीमारी का जब तक डाक्टर द्वारा सही निदान न हो जाए और वह इन्हें खाने की इजाजत न दे दे तब तक इन्हें इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। इन दवाइयों का ज़्यादा इस्तेमाल करने से शरीर की रोग-प्रतिरोधक शक्ति स्थायी रूप से घट जाती है। दूसरे इन दवाइयों का असर दिमाग में गर्मी का नियन्त्रण करनेवाले केन्द्र पर होता है। हमने बहुत बार अपने चिकित्सा-काल में यह देखा है कि ये ओषधियां कई बार शरीर की गर्मी को इतना नीचे ले आती हैं कि रोगी की सुरक्षा खतरे में पड़ जाती है और फिर उसकी गर्मी बढ़ाने के लिए दवाइयां देनी पड़ती हैं।

ठीक तो यही है कि रोगी की उचित सेवा-सुश्रूषा (नर्सिंग) से ही बुखार को कम किया जाए। जब बुखार १०४°-१०५° या १०६° तक हो जाए तो बीमार के सिर पर बर्फ के पानी की पट्टी और पेट पर ठंडे पानी की गद्दी रखनी चाहिए। उसका बदन गीले रोएंदार तौलिये से पोंछ देना चाहिए। ठण्डा पानी अथवा नीबू पड़ा पानी या सन्तरे, मौसमी का रस खूब पिलाना चाहिए। इन सबके पिलाने से उसे पेशाब ज्यादा होगा और उसके ज़रिये शरीर से रोग का गन्दा और ज़हरीला माद्दा निकलेगा। इन उपायों से रोगी को कोई नुकसान पहुंचने का खतरा नहीं रहता और बुखार धीरे-धीरे कम हो जाता है; बेचैनी, परेशानी में बहुत शान्ति मिलती है। इसके अलावा बुखार की हालत में रोगी को कम्बल या रज़ाई से भी ढककर नहीं रखना चाहिए। इससे बुखार और बढ़ जाने का अंदेशा रहता है। उसे हमेशा एक हलकी-सी चादर ओढ़ानी चाहिए।

कुछ इलाकों में बुखार के बारे में यह कहावत मशहूर है: 'मेहमान को और बुखार को अगर खाना न दो तो जल्दी भाग जाते हैं।' लेकिन बुखार में बिलकुल ही खाना बन्द नहीं कर देना चाहिए; बुखार आने के चौबीस घण्टे तक अगर रोगी कुछ न खाए तो कोई खास हर्ज नहीं

होता ; लेकिन इसके वाद उसको फाका नहीं करना चाहिए। कुछ पुराने ढंग के वैद्य और वुज़ुर्ग लोग अब भी फाका करना ही वुख़ार का सही इलाज समझते हैं। लेकिन वैज्ञानिक दृष्टि से यह धारणा गलत है। वुखार की हालत में वस्तुतः रोगी की रुचि खाने की ओर नहीं होती लेकिन उसके शरीर को तो पोषण की ज़रूरत होती ही है। क्योंकि वुखार में शरीर को रोग रूपी शत्रु से लड़ना पड़ता है। इसलिए उसे अधिक ताकत चाहिए जो खाने से ही मिलती है। इसके अलावा उसके शरीर की सुरक्षित शक्ति भी तो वहुत कुछ रोग से लड़ने में खत्म होती रहती है। यही कारण है कि लम्बे समय तक वुखार भोगनेवाला रोगी वेहद दुर्वल हो जाता है। निश्चय ही वुखार की हालत में रोगी का पाचन इस लायक नहीं होता कि रोटी हज़म कर सके। लेकिन उसे दूध और फलों के रस अधिक से अधिक मात्रा में देने चाहिए ताकि उसकी शारीरिक ताकत कम न हो पाए।

हमने पीछे वताया है कि वुख़ार किसी रोग का लक्षण-मात्र होता है। वैसे कुछ वीमारियों में वुखार होता है, कुछ में नहीं भी होता। अतः जहां वुखार का होना वीमारी का प्रमाण है वहां वुखार का न होना वीमारी न होने का प्रमाण नहीं है।

वुख़ार कितने दिन तक रहता है, कव वढ़ता है, कव घटता है, कितने दिन में टूटता है; यह सव उस वीमारी पर निर्भर करता है जिसके कारण वुखार होता है। अलग-अलग रोगों में वुखार का सिल-सिला अलग-अलग दर्जों पर चलता है। कुछ वुखार-प्रधान रोगों की गणना इस प्रकार है :

मलेरिया, कालाज़ार, गर्दनतोड़ वुखार, प्रसूत ज्वर (वच्चा होने के वाद), मियादी वुखार (मोतीझिरा), आम वात (रियूमैटिक फीवर), चेचक, खसरा, चिकिन-पॉक्स, न्यूमोनिया, इन्फ्लूएंज़ा, लू का वुखार, कनफेड़, डिप्थीरिया, प्लेग आदि।

मलेरिया

'मलेरिया' शब्द अब इतना प्रचलित हो चुका है कि इसकी विशेष व्याख्या की ज़रूरत नहीं रह जाती। मलेरिया शब्द से ही जाड़ा

लगकर बुखार चढ़ने का चित्र आंखों के सामने खिच जाता है। मलेरिया कोई आज की नई बीमारी नहीं है बल्कि सम्भवतः यह प्रागैतिहासिक काल में भी था। संसार की पुरानी से पुरानी चिकित्सा-पुस्तकों में मलेरिया का वर्णन मिलता है।

कदाचित् संसार में सबसे अधिक फैला हुआ मर्ज़ भी यही है। प्रायः तीस करोड़ नये व्यक्ति हर साल मलेरिया का शिकार बनते हैं। और प्रायः एक फीसदी लोग हर साल मलेरिया के कारण मर भी जाते हैं। यूं तो संसार के हर देश में मलेरिया होता है, लेकिन गर्म मुल्कों में इसका प्रकोप अधिक पाया जाता है।

मलेरिया को नष्ट करने के प्रयत्न आजकल अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर चल रहे हैं। लेकिन अमेरिका को छोड़कर पूरी सफलता और कहीं नहीं मिल पाई है। अमेरिका में निश्चय ही अब मलेरिया नहीं होता।

मलेरिया एक विशेष जाति के मच्छर (एनाफलीज़) के काटने से होता है। मलेरिया के कीटाणु मच्छर के थूक और गले में भरे होते हैं। जब वह मच्छर किसी स्वस्थ आदमी को काट लेता है तो उसे मलेरिया हो जाता है। मनुष्य के शरीर में ये कीटाणु बड़ी तेज़ी से बढ़ते और फैलते हैं। जब कोई स्वस्थ मच्छर मलेरिया के किसी रोगी को काटता है तो वह रोगी से कीटाणु ले लेता है और फिर दूसरे किसी स्वस्थ व्यक्ति को काटकर उसे मलेरिया का रोगी बना देता है। इस तरह यह मर्ज़ फैलता है। सितम्बर और अक्टूबर के महीनों में मलेरिया का प्रकोप ज़्यादा होता है। एक तरह से यह समय मलेरिया की फसल कहा जाता है क्योंकि इन दिनों ही मलेरिया के मच्छर अपने अण्डे देते हैं और इस कार्य के लिए ये सीलनदार, गीले और पानीवाले स्थानों को चुनते हैं। सितम्बर-अक्टूबर के दिन बरसात के अंतिम दिन होते हैं। तालाबों में, गढ़ों में, मकान की छतों पर तथा नालियों में जगह-जगह पानी भरकर ठहर जाता है और ऐसे ही स्थानों पर मच्छरों के अण्डे छा जाते हैं। आसपास की उगी हुई घास में मच्छरों को और भी प्रश्रय मिल जाता है।

मलेरिया के लक्षण—मलेरिया ज्वर का रोगी तीन ही बातों से गुज़रता है—(१) जाड़ा, (२) गर्मी, (३) पसीना। जब कोई व्यक्ति मले-

रियाक्रान्त होता है तो पहले उसे जाड़ा चढ़ता है। जाड़े के कारण वह कांपने लगता है। बहुत-से लोगों के जाड़े की अधिकता के कारण दांत बजने लगते हैं। जाड़ा दूर करने के ख्याल से रोगी कम्बल या लिहाफ ओढ़ता है लेकिन यह प्रायः उसे नाकाफी मालूम पड़ता है और वह दो-दो, तीन-तीन लिहाफ ओढ़ लेता है। कई लोगों को इस हालत में कै भी होने लगती है, सिरदर्द भी शुरू हो जाता है। लेकिन बुखार जाड़े के साथ ही बढ़ना शुरू होता है। यदि थर्मामीटर लगाकर देखा जाए तो १००° या १०१° निकलता है। यह जाड़े की हालत किसीको ¼ घण्टा, किसीको आधा घंटा और किसीको एक घण्टे तक रहती है और फिर गर्मी शुरू हो जाती है। तब रोगी अपने सब लिहाफ, कम्बल वगैरा उतार देता है। बदन जलता हुआ-सा मालूम होता है, नब्ज़ की रफ्तार बढ़ जाती है और रोगी बेचैनी और बदन में हड़कल महसूस करता है। यह गर्मी की हालत प्रायः चार-छः घण्टे और किसी-किसीको दस घण्टे तक भी रहती है। इसके बाद पसीना आना शुरू होता है। पसीने के साथ ही साथ बुखार गिरना शुरू हो जाता है। नब्ज़ की तेज़ रफ्तार घटने लगती है, और थोड़ी देर बाद बुखार बिलकुल उतर जाता है। अब रोगी काफी चैन का अनुभव करता है, लेकिन साथ ही कमज़ोरी भी महसूस करता है।

मलेरिया के कीटाणुओं की कुछ खास उपजातियों के कारण बुखार रोज़ाना भी चढ़ता है और तीसरे तथा चौथे दिन भी। तीसरे और चौथे दिनवाले बुखार क्रमशः 'तेइया' या 'तिजारी' और 'चौथिया' कहलाते हैं। बुखार दिन में किसी समय भी शुरू हो सकता है लेकिन सामान्य रूप से यह दोपहर बाद आक्रमण करता है।

उपद्रव—मलेरिया से कई छोटे-मोटे उपद्रव जैसे खांसी, दस्त वगैरा भी हो जाते हैं। लेकिन खास तौर पर इसका आक्रमण जिगर और तिल्ली पर होता है। मलेरियाग्रस्त इलाकों के लोगों के तिल्ली, जिगर आम तौर पर बढ़े हुए पाए जाते हैं। और चूंकि ये खून बनानेवाले अंग हैं इसलिए रोगी के बदन में खून बहुत कम हो जाता है। जो लोग इलाज में उपेक्षा करते हैं अथवा गरीबी के कारण इलाज नहीं करा पाते, अन्त में वे खून की कमी के कारण ही मर जाते हैं।

वहुत वार जिगर वढ़कर पीलिया (कामला) हो जाता है।

चिकित्सा—मलेरिया की सबसे वढ़िया दवा कुनैन है। यह रक्त में घुसे मलेरिया के कीटाणुओं को मारने में वेजोड़ काम करती है। आजकल वाज़ार में मिक्सचर और गोलियों के रूप में मलेरिया की जितनी पेटेण्ट दवाइयां मिलती हैं, सभी कुनैन पर वनी हुई होती हैं। मलेरिया रोकने के लिए दिन-भर में १५ ग्रेन कुनैन तीन-चार खुराकों में वांटकर खा लेना एक वयस्क व्यक्ति के लिए काफ़ी होता है। लेकिन कुनैन सेवन करने से पहले जुलाव लेकर पेट ज़रूर साफ कर लेना चाहिए। मिक्सचरों में दस्तावर दवा साथ मिली होती है। प्रायः कुनैन सेवन करने से लोगों के कान गुंजारने लगते हैं। लेकिन यह इस वात का सवूत होता है कि दवा शरीर में अपना काम ठीक ढंग से कर रही है। फिर यह शिकायत स्वयं ही जाती रहती है। वुखार छूट जाने के वाद भी एक सप्ताह के अन्दर दो मर्तवा तीन-तीन ग्रेन कुनैन खा लेनी चाहिए। क्योंकि वहुत वार कीटाणु शरीर में छिप जाते हैं और कुछ दिन वाद फिर प्रकट होकर वुखार पैदा कर देते हैं। जिन लोगों को मलेरियाग्रस्त इलाकों में जाना पड़े, सुरक्षा की दृष्टि से उन्हें भी सप्ताह में एक या दो वार तीन-तीन ग्रेन कुनैन सेवन कर लेनी चाहिए।

अव कुछ रासायनिक रूप से वनाई गई मलेरिया की नई दवाइयां चलने लगी हैं; ये वहुत थोड़ी खुराक में लेने पर ही काफी अच्छा असर करती हैं। लेकिन ये महंगी इतनी होती हैं कि साधारण व्यक्ति नहीं खरीद पाता। कुनैन इनसे कहीं सस्ती मिलती है। रोगी को यदि अधिक उपद्रव पैदा हो तो डाक्टर को दिखाना चाहिए।

वचाव—मलेरिया के दिनों में मसहरी लगाकर सोना चाहिए ताकि मच्छरों से वचाव रहे। घर के आसपास की घास, कूड़ा-करकट की सफाई कर देनी चाहिए। नालियों की सफाई कराके उनमें फिनाइल डालना चाहिए। हमारे देश में आजकल 'मलेरिया उन्मूलन योजना' चल रही है। इस विभाग के आदमी घर-घर में मच्छरों को मारने के लिए डी० डी० टी० छिड़कने आते हैं। उनसे अपने घरों में ज़रूर दवा छिड़कवानी चाहिए। वड़े-वड़े शहरों में जहां इस योजना के

केन्द्र बने हैं वहां सूचना देने पर सरकार की ओर से दवाइयां मुफ्त दी जाती हैं, तथा सूचना भेजकर कभी भी दवा छिड़कनेवालों को बुलाया जा सकता है।

कालाज़ार

कालाज़ार को हम मलेरिया का बड़ा भाई कह सकते हैं। यह भी उसी तरह एक विशेष प्रकार की मक्खी के काटने से होता है जैसे मच्छर के काटने से मलेरिया। कालाज़ार जिस रोगी के पीछे पड़ता है उसे बुरी तरह झंझोड़ डालता है। ज्वर कभी छूट जाता है, कभी आने लगता है, कभी लगातार कई सप्ताह तक बना रहता है। लेकिन सौभाग्य से यह रोग मलेरिया की तरह देशव्यापी नहीं है। बंगाल, बिहार, आसाम और यू० पी० में लखनऊ तक ही इसकी सीमा है, फिर उधर मद्रास के कुछ इलाकों में यह पाया जाता है। शेष भारत में यह रोग नहीं होता।

इसके लक्षणों में मुख्य है तिल्ली का बढ़ जाना। यदि इसका इलाज न कराया जाए तो तिल्ली घड़े के बराबर तक होती देखी जाती है। इसके अलावा रोगी के मसूड़ों से खून निकलता है अथवा नाक से नकसीर आने लगती है। इस रोग में त्वचा के नीचे भी रक्त-स्राव होकर वहां काले-काले चकत्ते पड़ जाते हैं, कदाचित् इसीलिए इसका नाम कालाज़ार पड़ा है। कालाज़ार भोगनेवाला रोगी बेहद कमज़ोर और रक्तहीन हो जाता है। और अन्त में खून की कमी से ही रोगी की मृत्यु होती है। इस रोग के सम्बन्ध में एक दिलचस्प बात यह है कि इसको फैलानेवाली मक्खी ज़्यादा ऊंची नहीं उड़ सकती, इसलिए यह रोग नीचे की मंज़िल में रहनेवालों को ही होता है। दूसरी या तीसरी मंज़िल पर रहनेवाले लोग अनायास ही सुरक्षित रहते हैं। इसके अतिरिक्त जिस परिवार में यह घुस जाता है वहां से मुश्किल से ही निकलता है।

मलेरिया की तरह इस रोग का इलाज लोग स्वयं नहीं कर सकते, हालांकि इसके लिए विशिष्ट ओषधियां हैं जो एण्टीमनी नामक धातु से तैयार की जाती हैं। किन्तु ये ओषधियां डाक्टर द्वारा नस में

इन्जैक्शन लगाकर ही शरीर में पहुंचाई जा सकती हैं। इस रोग की मुंह के द्वारा खाई जानेवाली ओपधियां नहीं होतीं। खून की जांच द्वारा यह रोग शीघ्र ही पकड़ में आ जाता है। कालाज़ार-प्रधान इलाकों में इसे लक्षणों द्वारा पहचानने में भी विशेष कठिनाई नहीं होती। मज़दूर और कुलीवर्ग के लोगों में क़ालाज़ार ज़्यादा देखने में आता है। ऊंचे वर्ग के परिवारों में बहुत ही कम होता है। इसका इलाज जल्दी से जल्दी शुरू कर देना चाहिए, अन्यथा तिल्ली अधिक बढ़ जाने पर इलाज बहुत लम्बा चलता है।

टाइफाइड (मोतीझिरा या मियादी बुख़ार)

ज्वर-प्रधान रोगों में कदाचित् सबसे लम्बे समय तक चलनेवाला बुख़ार टाइफाइड ही होता है। यूं साधारण तौर पर यह तीन-चार हफ्ते तो ले ही जाता है लेकिन कभी-कभी यह दो महीने तक नहीं हटता। यह एक खास किस्म के कीटाणु से फैलनेवाला रोग है। यह कीटाणु मुंह के ज़रिये पेट में पहुंचता है और तमाम आंतों को खराब करके उनमें सूजन पैदा कर देता है।

यह एक से दूसरे को लगनेवाली बीमारी होती है। इसलिए घर में जब किसीको टाइफाइड हो जाए तो जहां तक हो सके रोगी को अलग कमरे में रखना चाहिए। रोगी के काम में आनेवाली चीज़ों—जैसे कपड़े, बिस्तर, बर्तन, खाने की वस्तुएं, पानी, पेशाब, पाख़ाना आदि—को छूने से इसके कीटाणु दूसरे व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कर सकते हैं। इसीलिए, नर्सों और घर के तीमारदारों को यह रोग लग जाने का भारी खतरा रहता है। इस रोग के फैलाने में मक्खियों का भी भारी सहयोग रहता है। रोगी के पेशाब, पाखाने, नाक या थूक पर बैठकर वे अपने पैरों में असंख्य कीटाणु चिपटा लेती हैं और फिर दूसरों के भोजन पर बैठकर उसे कीटाणुयुक्त बना देती हैं। रोग-मुक्त होने के बाद भी रोगी के शरीर से कीटाणु पूरी तरह नष्ट नहीं होते और काफी समय तक शरीर में बने रहते हैं। ऐसा व्यक्ति दूसरों को रोग दे सकता है और 'टाइफाइड कैरियर' कहलाता है।

बिना उम्र और लिंग का लिहाज़ किए यह रोग बच्चे, बूढ़े,

जवान, अधेड़ स्त्री और पुरुष सभीको हो सकता है। रोग के कीटाणु शरीर में पहुंचने के हफ्ते दो हफ्ते या कभी-कभी तीन हफ्ते बाद रोग के लक्षण प्रकट होते हैं।

लक्षण—बुखार होने के साथ-साथ ही, तबियत गिरना, बदन में हड़कल, सिरदर्द, कमर में दुखन आदि शिकायतें पैदा होती हैं। पहले हफ्ते में ही बुखार १०३°-१०४° डिग्री तक पहुंचने लगता है। सुबह के समय अलबत्ता कुछ कम रहता है—१०१°-१०२° तक। साथ ही ज़बान पर बीच में सफेद-सा मैल चढ़ा हुआ दिखाई देता है जब-कि उसके किनारे और नोक लाल-सी रहती है। इसी दर्म्यान रोगी के पेट में सख्ती, दुखन और अफारा भी हो सकता है। आम तौर पर टट्टी साफ नहीं होती और कब्ज़ पड़ जाता है। लेकिन बाज़-बाज़ रोगी को पतले दस्त होते हैं।

दूसरे हफ्ते में यही सब लक्षण बढ़ जाते हैं। रोगी और अधिक रुग्ण रहता है। बुखार सुबह के समय नाम-मात्र को ही कम होता है। इसी दर्म्यान प्रायः रोगी को गफलत रहने लगती है। कभी-कभी वह गफलत में बकवास भी करता है।

तीसरे सप्ताह में ज्वर कम होना शुरू हो जाता है तथा और सभी लक्षण भी हलके पड़ने लगते हैं। लेकिन अगर दस्त होते हैं तो पेट की हालत खराब रहती है। अफारा और दर्द बना रहता है।

चौथे सप्ताह में रोगी की दशा काफी सुधर जाती है। बुखार बढ़ना बन्द हो जाता है, लेकिन रोगी बेहद कमज़ोर हो जाता है। अब रोगी को भूख लगनी शुरू होती है। तीमारदारों को इस समय बहुत सावधानी बरतनी चाहिए। खाना डाक्टर की हिदायत के अनुसार ही देना चाहिए। बाज़ वक्त रोगी बदनीयत होकर चुरा-छिपाकर कोई भी चीज खा बैठता है जो उसे बहुत नुकसान पहुंचा सकती है; क्योंकि अभी तक आंतों की हालत नाजुक ही होती है।

इलाज—अब से लगभग एक युग पहले टाइफाइड की कोई भी विशेष ओषधि नहीं थी और रोगी को अच्छी नर्सिंग करके ही ठीक किया जाता था। लेकिन अब 'क्लोरोमायसटीन' नामक एण्टी-बायटिक ओषधि टाइफाइड की विशेष ओषधि है, जो प्रायः एक सप्ताह में

पूरे तौर पर रोग को काबू में कर लेती है। लेकिन टाइफाइड में अच्छी नर्सिंग का महत्त्व अब भी कम नहीं है। अतः रोगी की सेवा-सुश्रूषा पर विशेष ध्यान देना चाहिए। उपर्युक्त ओषधि का प्रयोग हमेशा डाक्टर की राय से करना चाहिए।

सावधानी—बहुत बार बुखार हो जाने पर लोग पेट की खराबी समझकर, शुरू में ही दस्तों की दवा ले लेते हैं। लेकिन यह आदत अच्छी नहीं होती। टाइफाइड के केस में जुलाब लेने से रोग बिगड़ जाने का खतरा रहता है। जुलाब के ज़रिये रोगी को टट्टी के साथ खून आ सकता है; और खून आना टाइफाइड का सबसे बड़ा उपद्रव होता है। कई बार तो खून इतना अधिक और लगातार आता है कि रोगी की मृत्यु हो जाती है।

कई बार रोग के दूसरे हफ्ते में रोगी के पेट और छाती पर बारीक खसखस के बराबर सफेद दाने दिखाई देते हैं। कुछ लोगों का विश्वास होता है कि यदि दाने नहीं दिखाई देते, तो रोग भयंकर रूप धारण करता है; इनके निकलने पर रोग का जोश निकल जाता है; लेकिन यह बात विज्ञानपुष्ट नहीं है। कभी-कभी ये दाने टाइफाइड के अतिरिक्त दूसरे बुखारों में भी दिखाई दे जाते हैं।

इन्फ्लूएंज़ा (फ्लू)

सन् १९१८-१९ में सारी दुनिया में फैलने के कारण लोग इन-फ्लूएंज़ा से काफी परिचित हो गए हैं। और अभी तीन वर्ष पहले दिल्ली में फैलने के कारण यहां के लोगों को इसकी याद और ताज़ा हो गई है। कुछ वैज्ञानिकों का ऐसा अध्ययन है कि यह रोग हर तीस साल बाद किसी न किसी मुल्क में देशव्यापी रूप में फैलता है। व्यापक रूप में फैलने पर दो-तीन सप्ताह में रोग अपने पूरे ज़ोर पर पहुंच जाता है और फिर एक या दो महीनों में जाकर ठण्डा पड़ता है। हालांकि यह रोग घातक नहीं होता फिर भी सन् १९१८ में लग-भग आठ लाख व्यक्ति इन्फ्लूएंज़ा से मरे थे। इस रोग का कीटाणु 'वीरस' जाति का होता है जो खास तौर पर गले पर असर करता है। लेकिन साथ ही गले को कमज़ोर बनाकर न्यूमोनिया जैसे रोगों

के कीटाणुओं को बुलाकर उनका प्रवेश श्वास-नलिकाओं में करा देता है। हालांकि ऐसा कम ही होता है, लेकिन न्यूमोनिया पैदा हो जाना इस रोग का गम्भीर उपद्रव माना जाता है। अनुभव से लोग अब इस बात को जानने लगे हैं कि यह एक प्रकार से उड़कर लगनेवाला मर्ज़ है। इसके कीटाणु चूंकि गले और नाक की झिल्ली को अपना शिकारगाह बनाते हैं इसलिए गले से निकलनेवाले थूक, बलगम तथा नाक से निकलनेवाले पानी में रहते हैं। किसी रोगी के थूकने अथवा नाक साफ करने से जो बहुत छोटे-छोटे जलकण हवा में इधर-उधर उड़ते हैं उनसे रोग दूसरे आदमी को लग जाता है। रोगी के मुंह के पास मुंह लेजाकर बात करने में भी रोग लग जाने का खतरा रहता है।

लक्षण—वास्तव में इस बीमारी का आक्रमण एकाएक होता है। व्यक्ति के अन्दर रोगी होने की अनुभूति तथा शरीर में हड़कल, बेचैनी और परेशानी पैदा हो जाती है। रोगी का मन किसी काम को नहीं करता। यूं प्रारम्भ में सारे लक्षण प्रायः जुकाम-नज़ले के से होते हैं। लेकिन फ्लू में नाक से ज़्यादा पानी नहीं जाता; और रोगी बेहद कमज़ोरी महसूस करता है। इसके अतिरिक्त सिरदर्द, थकावट, शरीर दुखना, सूखी खांसी और बुखार (आम तौर पर बुखार बहुत ऊंचा नहीं जाता, १०१° या १०२° तक रहता है) आदि भी फ्लू के चिह्न हैं। कभी-कभी रोगी जाड़ा-सा भी महसूस करता है।

यूं तो फ्लू तीन-चार दिन में ही ठीक हो जाता है लेकिन कभी-कभी कोई-कोई रोगी ठीक होने में एक सप्ताह तक ले लेता है। और इसकी कमज़ोरी तो कई हफ्ते बाद जाकर निकलती है।

इलाज—वस्तुतः इन्फ्लूएंज़ा की कोई विशेष दवा अभी तक नहीं निकल पाई है। पेन्सिलीन या स्ट्रैप्टोमायसीन जैसी एण्टी-बायटिक ओषधियां जो न्यूमोनिया जैसे गम्भीर उपद्रवों को रोकने के लिए दी जाती हैं, फ्लू के 'वीरस' पर इनका भी कोई असर नहीं होता। एहतियात ही इसका सबसे अच्छा इलाज है। फ्लू का असर होते ही बिस्तर में लेटकर आराम करना चाहिए। चाय, काफी, दूध, फलों के रस लेने चाहिए। डाक्टर को बुलाकर दिखाना फायदेमन्द रहता है।

हमारा अपना अनुभव यह है कि यूनानी 'जोशांदा' जोकि आम तौर पर जुकाम-नजले के लिए इस्तेमाल किया जाता है, फ्लू में भी बहुत लाभ पहुंचाता है। यह रोग तकलीफदेह भले ही होता है, लेकिन घातक नहीं है।

सर्दी-ज़ुकाम

सर्दी लगकर जुकाम हो जाना एक आम शिक़ायत होती है। सच तो यह है कि ज़ुकाम इन्फ्लूएंज़ा का ही हलका रूप होता है। इन्फ्लूएंज़ा के समान ही इसका प्रभाव भी नाक की झिल्ली और गले पर ही होता है। लेकिन इसमें बुखार नहीं होता; तबियत गिरी-पड़ी ज़रूर रहती है। एक-दो दिन लगातार नाक से पानी बहता है और फिर धीरे-धीरे गाढ़ा बलगम आने लगता है। तीन-चार दिन रहकर जुकाम तहलील (ज़ह्म) हो जाता है। गले की खराबी के कारण इसमें खांसी भी हो जाती है। खांसी की ओर से सावधान रहना चाहिए, क्योंकि इसका असर नीचे सरककर श्वास-नलिकाओं तक पहुंचकर 'ब्रांकाइटिस' पैदा कर सकता है।

ज़ुकाम अधिकांश रूप में कब्ज़ की हालत में सर्दी लग जाने से होता है। सर्दी प्रायः पैरों की ओर से असर करती है। कब्ज़ की हालत में नंगे पैर ठण्डे पानी में चलने, वर्षा के पानी में भीगने, अथवा सीलनदार स्थान पर बैठने से ज़ुकाम हो जाता है। जिन लोगों का पेट साफ रहता है उन्हें ज़ुकाम की शिकायत यदा-कदा ही होती है। नमक पड़े गर्म पानी के गरारे और जोशांदा पीना लाभ करते हैं। जोशांदे से शौच भी साफ होता है। आयुर्वेदिक औषधि 'सितोपलादि चूर्ण' २ माशे तथा देसी नौसादर २ रत्ती शहद में मिलाकर दिन में दो-तीन बार चाटने से ज़ुकाम में बहुत लाभ होता है।

न्यूमोनिया

एकाएक पसलियों में दर्द शुरू हो जाना—जिसकी वजह से पूरी सांस लेना या खांसना भी मुश्किल हो जाए; तेज़ बुखार, खांसी, सांस की रफ्तार बढ़ जाना, ज़्यादा खांसने पर मामूली-सा बलगम आना,

ये सभी आम तौर पर न्यूमोनिया के लक्षण हैं। यह फेफड़ों पर हमला करनेवाला रोग है जोकि 'न्यूमोकेकिस' नाम के कीटाणु से पैदा होता है। जबकि रोग का असर दोनों फेफड़ों पर होता है तो उस हालत को 'डवल न्यूमोनिया' कहते हैं। आम तौर पर यह समझा जाता है कि न्यूमोनिया सर्दी लग जाने के कारण हो जाता है। यह धारणा वहुत अंशों तक ठीक है। वैज्ञानिकों का कथन है कि न्यूमोनिया के कीटाणु मनुष्य के शरीर में ही रहते हैं; और उपयुक्त मौका पाने पर हमला कर देते हैं। अतः वह उपयुक्त मौका उन्हें शरीर में सर्दी वैठ जाने पर ही मिलता है। लेकिन एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को उड़कर लगने में भी न्यूमोनिया इन्फ्लूएंजा से कम नहीं है। यह वहुत जल्दी दूसरे लोगों को लग सकता है।

एक ज़माना था कि न्यूमोनिया वड़ी घातक वीमारी थी। जिसे न्यूमोनिया हो जाता था वस भगवान ही उसका रक्षक था। इलाज-माजरे के वावजूद रोगी आठ-दस दिन तक भारी तकलीफ भुगतता था। वुखार वरावर तेज़ १०४°-१०५° तक वना रहता था। इसके वाद कहीं रोगी को कुछ चैन आता था। तव न्यूमोनिया के चार रोगियों में से दो प्रायः मर जाते थे। लेकिन जव से सल्फा-ड्रग्स और एण्टी-वायटिक ओषधियां चली हैं तव से मानो न्यूमोनिया की लगाम हाथ में आ गई है। अव कोई विरला वदकिस्मत ही न्यूमोनिया से मरता है। आंकड़ों के अनुसार अव न्यूमोनिया के वीस रोगियों में से उन्नीस अच्छे हो जाते हैं। और यह एक रोगी भी कदाचित् इसलिए मरता है कि वह इलाज देर से शुरू करा पाता है अथवा वेहद कमज़ोर होता है। इतना ही नहीं, इन ओषधियों ने इस वीमारी की मियाद भी घटा दी है। अव तीन-चार दिन के इलाज के वाद रोगी रोगमुक्त हो जाता है।

घर में जव भी किसी व्यक्ति में ऊपर कहे न्यूमोनिया के लक्षण दिखाई पड़ें तो उसे तुरन्त डाक्टर को दिखाना चाहिए। यह हमेशा ध्यान रखें कि न्यूमोनिया के इलाज में देर करने से रोगी की हालत खतरनाक हो सकती है। इस सम्वन्ध में हम एक चेतावनी पाठकों को और दे देना उचित समझते हैं कि वहुत-से लोग यूनानी या

वैद्यक के इलाज के ही कायल होते हैं। अंग्रेज़ी (डाक्टरी) इलाज में उनका विश्वास नहीं होता। इसलिए वे हर मर्ज़ का इलाज हकीम या वैद्यों से ही कराते हैं। लेकिन न्यूमोनिया के मामले में यूनानी या वैद्यक की दवाइयां वह काम नहीं कर सकतीं जो नवाविष्कृत डाक्टरी दवाइयां करती हैं। इसलिए इस रोग में खतरे से बचने के लिए हमेशा डाक्टरी इलाज ही कराना चाहिए।

न्यूमोनिया कई मर्तबा दूसरे रोगों के साथ या उनके उपद्रव-स्वरूप भी हो जाता है। कई बार इन्फ्लूएंज़ा बिगड़कर न्यूमोनिया बन जाता है। और भी दूसरे श्वास-नलिकाओं के रोग न्यूमोनिया में बदल जाते हैं। बहरहाल, बच्चों में न्यूमोनिया काफी गम्भीर रूप धारण कर लेता है। खसरा निकलने पर तो १०० में से ७५ बच्चों को न्यूमोनिया होता है। हमारे भारत में चूंकि खसरा 'माता' श्रेणी की बीमारी मानी जाती है, इसलिए लोग न्यूमोनिया हो जाने पर भी बच्चे का कोई इलाज नहीं कराते और फलस्वरूप न्यूमोनिया में बच्चे मर जाते हैं। खसरा (छोटी माता) कोई घातक बीमारी नहीं होती, लेकिन उसमें जब न्यूमोनिया हो जाता है तो वह बच्चे को ले बैठता है। इसलिए खसरा निकलने पर डाक्टर से रोगी की परीक्षा कराके यह निश्चय कर लेना चाहिए कि उसे न्यूमोनिया तो नहीं हुआ है।

न्यूमोनिया सर्दी के दिनों में भी होता है और अधिकतर मौसम बदलने पर होता है; फाल्गुन, चैत में इसकी शिकायत अधिक देखी जाती है। हालांकि न्यूमोनिया में फौरन कोई खतरा नहीं होता फिर भी जल्दी से जल्दी डाक्टर को बुलाना चाहिए तथा रोगी की हिफाज़त और सुरक्षा करनी चाहिए। रात को यदि घर में अचानक किसी व्यक्ति को न्यूमोनिया पड़ जाए तो उसे गर्म जगह में रखना चाहिए। लेकिन वह स्थान ऐसा ज़रूर होना चाहिए जहां से हवा काफी गुज़रती हो। रोगी को सीधे दरवाज़े या खिड़की के पास नहीं लिटाना चाहिए जहां हवा के झोंके लगें। थोड़ा बचाकर उसकी खाट डालें। चूंकि इस रोग में रोगी को श्वास लेने में थोड़ा कष्ट होता है, इसलिए उसे ज़्यादा हवा दरकार होती है। फिर भी यदि कमरे में ठण्ड हो तो अंगीठी जलाकर उसे गर्म रखना चाहिए। सफेद तेल

(लिलीमैण्ट तारपीन) से उसकी पसलियों पर मालिश करके रूअड़ से सेंकना चाहिए। गर्म दूध, चाय, गर्म काफी या गर्म पानी में थोड़ी ब्राण्डी देने से रोगी को जरूर कोई राहत मिलती है। बच्चों और बूढ़े लोगों में न्यूमोनिया कुछ अधिक खतरनाक होता है। इसलिए इनका इलाज विशेष तत्परता और सावधानी से कराना चाहिए।

'लू' का बुखार

लू लग जाना या लू के बुखार से मतलब होता है अत्यधिक गर्मी के कारण शरीर का तापक्रम बढ़ जाना और यह गर्मी शरीर पर कई तरह से असर कर सकती है। लेकिन अधिकांश रूप में सूर्य की तेज़ किरणें सिर पर पड़ने से ही गर्मी असर करती है। क्योंकि जेठ-बैसाख के दिनों में लूएं चलती हैं और इन्हीं दिनों सूरज की गर्मी भी अत्यधिक तेज़ होती है, इसलिए इस बीमारी को 'लू लगना' कह दिया जाता है। गर्मी की दोपहरियों में खुले खेतों में काम करनेवाले किसान-मज़दूर अथवा तेज़ धूप में सफर करनेवाले व्यक्ति ज्यादातर लू के शिकार होते हैं। इसके अतिरिक्त खानों में काम करनेवाले लोग, जहाज़ या रेल के इंजिन में आंच के सामने रहनेवाले व्यक्ति भी गर्मी के शिकार हो जाया करते हैं। अधिक गर्मी के साथ-साथ जहां सीलन ज़्यादा होती है वहां व्यक्ति पर गर्मी का असर जल्दी पड़ता है।

जबकि व्यक्ति पर गर्मी का साधारण असर होता है तो उसे कोई खास बुखार नहीं होता। ऐसी हालत में उसे सिरदर्द हो जाता है और वह एकाएक बहुत कमज़ोरी और थकावट महसूस करने लगता है, क्योंकि गर्मी के कारण उसके शरीर का पानी कुछ सूख जाता है। ऐसी हालत में उसे अंधेरे और ठण्डे कमरे में लिटाकर उसके सिर पर बर्फ के पानी की पट्टियां रखनी चाहिए और नमक डालकर पानी अथवा नीबू की शिकंजी काफी मात्रा में पिलानी चाहिए।

गर्मी और धूप का जब ज़्यादा असर हो जाता है तब तो रोगी की हालत काफी खराब हो जाती है। क्योंकि ऐसी हालत में दिमाग में शारीरिक गर्मी का नियन्त्रण करनेवाला केन्द्र ही खराब हो जाता है। और तब रोगी को बहुत तेज़ सिरदर्द होता है; शरीर की तमाम

जिल्द खुश्क और गर्म हो जाती है; रोगी बेहद कमजोरी और बेचैनी महसूस करता है; उसकी हालत आधी बेहोशी की सी रहती है, पिंडलियों में ऐंठनी होती है; कभी-कभी कै होने लगती है। पसीना बिलकुल नहीं आता; आंखें चढ़ी-चढ़ी नशीली-सी हो जाती हैं; और थर्मामीटर से बुखार १०५°-१०६° तथा इससे ऊपर भी पहुंच जाता है।

रोगी की यह दशा वस्तुतः बहुत खतरनाक होती है। अतः ऐसी हालत में फौरन डाक्टर को बुलाना चाहिए। वैसे इस हालत में सिद्धांततः इलाज होता है—बढ़ी हुई गर्मी को शान्त करना। इसके लिए पहले तो रोगी को एनीमा दिया जाता है; क्योंकि यह माना गया है कि हरएक 'लू' या गर्मी के रोगी को कब्ज जरूर होता है; या यूं कहना चाहिए कि कब्ज की हालत में ही गर्मी अपना असर ज्यादा करती है। इस हालत में एनीमा ठण्डे पानी का दिया जाता है, गर्म का नहीं। फिर रोगी को ठण्डक पहुंचाने के लिए पानी-भरे टब में तब तक लिटाया जाता है जब तक कि उसका बुखार १०१° तक न गिर जाए। इसके बाद उसको बिस्तर में लिटाकर सिर पर ठण्डे बर्फ के पानी की पट्टियां रखी जाती हैं, और खूब पानी तथा फलों का रस पिलाया जाता है ताकि गर्मी से सूखे हुए पानी की पूर्ति हो सके।

गर्मी का मारा रोगी रोगमुक्त होने पर भी बहुत दिनों बाद ही चलते-फिरने लायक होता है। कभी-कभी तो उसे पूर्ण स्वस्थ होने में एक-एक महीना लग जाता है।

सावधानी—गर्मी के दिनों में खास तौर पर कब्ज नहीं पड़ने देना चाहिए। महीने में दो-तीन बार एनीमा लगाकर पेट साफ रखना अच्छा होता है। दोपहर के समय बाहर जाते वक्त सिर पर हैट, टोपी या साफा पहन लेना एहतियात की दृष्टि से बहुत अच्छा है। इसके अतिरिक्त इन दिनों में पानी खूब पीना चाहिए। गर्मियों की दोपहर में जब कभी बाहर सफर के लिए जाना हो तो काफी पानी पीकर चलना चाहिए। आजकल टोपी या साफे का रिवाज बहुत कम होता जा रहा है; लोग (खास तौर पर विद्यार्थी और पढ़े-लिखे बाबू) नंगे सिर ही रहना ज्यादा पसन्द करते हैं; लेकिन गर्मी के दिनों में उन्हें यह

खतरा नहीं उठाना चाहिए। गांव के लोग आज भी खुले सिर नहीं रहते।

विशिष्ट चिकित्सा—देसी इलाजों में ग्रांवी को भुलभुलाकर उसका पन्ना बनाकर और नमक डालकर रोगी को पिलाया जाता है; और यह विधि बहुत लाभ करती है। यह विश्लेषण तो अभी नहीं किया गया है कि यह पन्ना क्योंकर लाभ पहुंचाता है, किन्तु सम्भवतः यह मस्तिष्क के गर्मी नियन्त्रण करनेवाले केन्द्र को बेकार होने से रोकता है और इसीलिए खूब लाभ दिखाता है। इन दिनों तरबूज़ और खरबूज़ों की फसल होती है और इन दोनों फलों में पानी अधिक होता है। फलतः इनके सेवन करते रहने से भी आदमी लू के असर से बचा रहता है।

कनफेड़ (कनवर या मम्प्स)

हलके बुखार से शुरू होनेवाली इस बीमारी में कान के नीचे की गांठें सूज जाती हैं। प्रायः पहले एक ओर की गांठें सूजती हैं और फिर दूसरी ओर की। सूज जाने पर ये गांठें पत्थर जैसी सख्त पड़ जाती हैं। बीमारी के दूसरे-तीसरे दिन बुखार कुछ तेज़ हो जाता है; और सूजन इतनी बढ़ जाती है कि रोगी को बाज़ मर्तबा पानी तक निगलना दुश्वार हो जाता है।

यह रोग बच्चों को अधिकतर होता है। आम तौर पर पांच से लेकर पन्द्रह वर्ष की आयु के बच्चों को यह अपना शिकार बनाता है लेकिन कई बार जवान आदमी को भी घर दबाता है। यह कीटाणुओं से उत्पन्न होनेवाला रोग है और बहुत जल्दी एक से दूसरे को लग जाता है। कभी-कभी तो जहां घर में एक बच्चे को हुआ वहां एक के बाद एक सभी बच्चों को कनफेड़ निकलते हैं। कई बार स्कूलों में सारी कक्षा के बच्चों में फैल जाता है। नाक के पानी और मुंह के थूक से इसका असर एक से दूसरे में पहुंचता है। सूजन चार-पांच दिन रुककर फिर अपने-आप ही उतर जाती है। जिसे एक बार कनफेड़ निकलते हैं उसे दोबारा शायद ही कभी निकलते हों। इस रोग का कोई खास इलाज अब तक मालूम नहीं हो सका है और न यह रोग घातक ही

होता है; अलवत्ता दो-चार दिन परेशानी ज़रूर रहती है।

जव कभी किसी जवान आदमी पर इसका हमला होता है तो कभी-कभी इसका असर जननेन्द्रियों पर होता देखा जाता है। पुरुषों के अण्डकोषों में दर्द और सूजन हो जाती है और स्त्रियों की डिम्ब-ग्रंथियों तथा स्तनों पर भी सूजन हो जाती है। कभी-कभी उनके भगोष्ठ भी सूज जाते हैं। ऐसी हालत में डाक्टर को दिखा लेना चाहिए ताकि जननेन्द्रियों की यह सूजन कोई स्थायी खरावी न पहुंचा सके।

कनफेड़ का मरीज़ जव तक पूरे तौर पर ठीक न हो जाए उसे एहतियात के तौर पर अलग कमरे में रखना अच्छा रहता है।

डिफ्थीरिया

डिफ्थीरिया का कोई हिन्दी नाम नहीं है और कदाचित् यह रोग आयुर्वेद के प्रणेताओं को मालूम भी नहीं था। यूं तो यह रोग ज्यादा-तर वच्चों में होता है लेकिन कभी-कभी वड़ी आयु के लोगों को भी हो जाता है। इस रोग का हमला खास तौर पर गले और 'गदूद' (टान्सिलों) पर होता है, लेकिन कभी-कभी यह वढ़कर नाक की झिल्ली तक भी फैल जाता है। इसका हमला प्रायः एकाएक होता है। गला और टान्सिल लाल सुर्ख हो जाते हैं और उनपर एक वहुत वारीक सफेद-सी झिल्ली या पर्दा फैल जाता है। इस पर्दे को छूने-मात्र से इसमें से खून निकलता है। लेकिन हर केस में परदा फैलना जरूरी नहीं होता। वहुत-से रोगियों में परदे का अभाव भी रहता है। रोग का असर जव स्वर-यन्त्रों तक फैल जाता है तो हालत खतरनाक वन जाती है। वच्चे की सांस घुटने लगती है। डिफ्थीरिया में वुखार ज्यादा तेज़ नहीं होता; लगभग १०१° तक रहता है। लेकिन रोगी को वेचैनी, परेशानी, हड़कल, सिरदर्द और तवियत की गिरावट वहुत होती है।

डिफ्थीरिया वास्तव में वहुत खतरनाक और वहुत तेज़ी से वढ़ने-वाला मर्ज़ है। घर पर इसकी कोई एहतियात और इलाज नहीं हो सकता। इसलिए ऐसे रोगी को फौरन डाक्टर के सुपुर्द कर देना चाहिए। इस मर्ज़ में घण्टे दो घण्टे की देर भी रोगी की जिन्दगी और

मौत का प्रश्न बन जाती है। रोगी को अस्पताल भेज देना अधिक बेहतर रहता है। इस रोग की खास दवा है : 'डिप्थीरिया एण्टी-टाकसिन' जोकि जल्दी से जल्दी लग जानी चाहिए। वैसे पैन्सिलीन और स्ट्रैप्टोमायसीन आदि एण्टी-बायटिक ओषधियां भी बहुत कुछ इसकी रोकथाम करती हैं। डिप्थीरिया भारत की अपेक्षा ठण्डे यूरोपीय मुल्कों में ज्यादा होता है। कुछ चिकित्सा-शास्त्रियों का मत है कि बच्चे को छः मास की आयु में 'डिप्थीरिया-एण्टी-टाक्सीन' का टीका लगवा देना चाहिए ; इससे चेचक के टीके की भांति डिप्थीरिया से भी सुरक्षा हो जाती है। अमेरिका में इस विधि से डिप्थीरिया पर बहुत काबू पा लिया गया है।

यह रोग बहुत जल्दी एक से दूसरे को लगता है और इसकी गिनती छूतवाले रोगों में की जाती है। कभी-कभी तो यह क्षेत्रीय रूप में खूब फैलता है। इसके कीटाणु गले के थूक और नाक के बलगम तथा नाक से बहनेवाले पानी में रहते हैं। रोग अच्छा हो जाने पर भी ये कीटाणु काफी समय तक गले और नाक में पाए जाते हैं और इस प्रकार अच्छा हुआ रोगी भी यह रोग दूसरों को दे सकता है। बच्चों के गले में खराबी की हालत में डिप्थीरिया का सन्देह करना सुरक्षा की दृष्टि से अच्छा रहता है।

चेचक (स्मॉल-पॉक्स)

चेचक को बहुत से क्षेत्रों में 'बड़ी माता' के नाम से भी पुकारा जाता है। चेचक की भयानकता वास्तव में बड़ी खौफनाक होती है। बड़े आदमियों की अपेक्षा बच्चों पर ही इसका प्रकोप अधिक होता है। वैसे कभी-कभी यह अधेड़ उम्र के लोगों पर भी हमला करती देखी गई है।

चेचक में सारे शरीर पर बड़े-बड़े दाने निकलते हैं। बाद को इनमें गाढ़ा पानी-सा भर जाता है। लेकिन रोग की शुरुआत बुखार से होती है और साथ ही रोगी को सिरदर्द, कै, कमर का दर्द और गले में खराश भी होती है। बुखार १०४°-१०५° तक पहुंच जाता है। आम तौर पर तीन-चार दिन बुखार रहने के बाद बदन पर

बड़े दाने-से उभरते हैं और पांचवें या छठे दिन इन दानों में पानी भर जाता है। ये दाने गोल होते हैं, बीच का भाग दबा हुआ होता है और किनारे लाल तथा उठे हुए होते हैं। ये दाने काफी छीदे-छीदे भी होते हैं। लेकिन रोग यदि तीव्र होता है तो दाने बहुत पास-पास निकलते हैं। दो-तीन दाने साथ मिलकर बहुत बड़ा रूप ले लेते हैं। चेहरा सूज जाता है और सूजन के कारण आंखें बन्द ही रहती हैं। रोग की भयानक दशा में किसी-किसी रोगी को ये दाने आंखों के भीतर भी निकल आते हैं, जिनसे एक या दोनों आंखें जाती रहती हैं। अक्सर दसवें दिन से दानों का पानी सूखना शुरू होता है और धीरे-धीरे तीन-चार या पांच दिन में वे सब खुश्क हो जाते हैं। और इनपर से मोटा पपड़ीनुमा खुरण्ड उतरता है और दानों की जगह निशान और हलके गढ़े रह जाते हैं।

चेचक के रोगी के अच्छा होने न होने के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। रोग के तेज़ हमले में अक्सर मरीज़ मर भी जाते हैं। चेचक भयानक रूप से छूत की बीमारी है, यहां तक कि रोगी के अच्छा हो जाने या मर जाने के बाद भी यह दूसरों को लग जाती है। रोगी के नाक, थूक और दानों के पानी से तो इसका जहर दूसरों तक फैल ही सकता है; साथ ही रोगी के कपड़े, बर्तन, चारपाई आदि भी रोग को फैलाने में सहायक होते हैं। रोगी के दानों पर से उतरनेवाले सूखे खुरण्ड जिन्हें 'दाल' कहते हैं, वे भी रोग के कीटाणुओं से भरे हुए होते हैं।

पिछले वक्तों में झाड़-फूंक करनेवाले सयाने, ओझे और भगत लोग इस 'दाल' को शीशी में भरकर रखते थे और धूर्तता दिखाने के लिए किसी भी बच्चे को बताशे में रखकर प्रसाद के रूप में खिला देते थे और फिर उसके घर जाकर कह देते थे कि तुम्हारे घर आठ दिन बाद 'माता मैया' की मेहर होगी। फलतः जब बच्चे को चेचक निकल आती थी तो उन लोगों की चांदी बनती थी।

इलाज—रोग का आक्रमण हो जाने पर इस रोग के लिए कोई खास दवा नहीं है। सिर्फ इसका प्रतिरक्षात्मक इलाज है बचपन में चेचक का टीका लगवा देना। प्रतिरक्षा की दृष्टि से चेचक के टीके की

विधि चिकित्सा-विज्ञान की भारी सफलता है। लेकिन हमारे देश में अब भी गांव के लोग बच्चों को टीका लगवाने से डरते हैं। इसका कारण केवल अशिक्षा है। हर बच्चे को पहले और फिर चौथे या पांचवें साल में टीका लगवा देने के बाद प्रायः चेचक का खतरा नहीं रहता।

घर में किसीको भी चेचक हो जाने पर भारी सावधानी बरतनी चाहिए। रोगी को बिलकुल अलग कमरे में रखें; उसके इस्तेमाल की प्रत्येक वस्तु अलग रखें। बाद को रोगी की इस्तेमाल की हुई अधिक से अधिक चीज़ों को जलाकर नष्ट कर देना चाहिए। बर्तनों को एक घण्टे तक पानी में उबालने के बाद इस्तेमाल में लाना चाहिए। बेहतर यह होता है कि रोगी की सेवा में ऐसे व्यक्ति को रखा जाए जिसे एक बार चेचक निकल चुकी हो; क्योंकि एक बार यह रोग होने के बाद जीवन में दोबारा नहीं होता। रोगी की सेवा में सफाई का भारी महत्त्व होता है। अच्छा होने के बाद रोगी के कमरे को तूतिये और चूने से पुतवा देना चाहिए।

खसरा (छोटी माता)

छः महीने की उम्र से चार वर्ष तक के बच्चों में होनेवाला यह रोग, काफी जल्दी फैलनेवाला और छूत का रोग है। प्रायः यह देखा जाता है कि यदि घर में कई बच्चे हैं तो एक बच्चे को होने के बाद अगर पूरी सावधानी न रखी जाए तो यह बारी-बारी से सब बच्चों को हो जाता है।

शुरू में बच्चे को बुखार आता है जो १०२° तक पहुंच सकता है। साथ ही नाक, आंख से पानी बहता है; आंखें लाल रहती हैं और बच्चे को खुश्क खांसी हो जाती है। शुरू में प्रायः ये इन्फ्लूएंज़ा के से लक्षण प्रकट होते हैं। तीन दिन तक ये लक्षण उत्तरोत्तर बढ़ते ही जाते हैं। चौथे दिन कानों के पीछे लाल चकत्ते से दिखाई पड़ने लगते हैं; जो शीघ्र ही चेहरे पर और फिर सारे बदन में फैल जाते हैं। ये लाल चकत्ते वास्तव में बहुत ही बारीक-बारीक दानों के समूह होते हैं। कहीं पांचवे दिन और कहीं-कहीं छठे दिन ये चकत्ते

गायब हो जाते हैं, और साथ ही बुखार भी उतर जाता है। लेकिन इस रोग में उपद्रवस्वरूप खांसी और उससे भी बढ़कर न्यूमोनिया होने का खतरा बना रहता है। इसलिए रोगी बच्चे को डाक्टर को अवश्य दिखाना चाहिए। यदि न्यूमोनिया होगा तो चकत्ते हट जाने पर भी बुखार और खांसी बने रहेंगे। एण्टी-बायटिक्स और सल्फा-ड्रग्स से न्यूमोनिया भी जल्दी ही अच्छा हो जाता है।

चूंकि खसरा की कोई दवा नहीं होती इसलिए हमारे देश में लोगों में आम धारणा यह हो गई है कि खसरा में दवा नहीं देनी चाहिए। फलतः न्यूमोनिया हो जाने पर भी लोग (खास तौर पर गांवों के लोग) डाक्टर को नहीं दिखाते। नतीजा यह होता है कि न्यूमोनिया बढ़कर बच्चे की जान ले लेता है। यूं खसरा एक निरापद रोग है लेकिन इसमें मरनेवाले बच्चे न्यूमोनिया की चपेट में आकर तब ही मरते हैं जबकि न्यूमोनिया का इलाज नहीं कराया जाता।

यह रोग शुरू के दिनों में भयंकर छूतवाला होता है। रोग के कीटाणु गले और नाक से निकलनेवाले पानी में रहते हैं। खसरे के रोगी बच्चे को दूसरे बच्चों से बिलकुल अलग रखना चाहिए और उसकी इस्तेमाल की हुई चीजें दूसरे बच्चों के इस्तेमाल में नहीं लानी चाहिए। रोगमुक्त होने के तीन-चार दिन बाद बच्चे को दूसरे बच्चों के साथ खेलने की छुट्टी दी जा सकती है। एक बार खसरा होने के बाद फिर दोबारा उसका आक्रमण प्रायः नहीं होता।

चिकिन-पॉक्स

यह भी चेचक (माता) की श्रेणी का ही रोग है; लेकिन बहुत हलका और कम तकलीफदेह होता है। इसका हमला भी सिर्फ चार-पांच साल की उम्र तक ही होता है। शुरू में हलका-सा बुखार होता है और अगले दिन छाती या पेट पर कुछ छीदे-छीदे-से दाने दिखाई देते हैं जो बाद को चेहरे पर भी निकल आते हैं। कुछ घण्टों के बाद उनमें पानी-सा भर जाता है। प्रायः दो-तीन दिन बाद ये सूख जाते हैं और उनकी पपड़ी गिर जाती है।

हलके बुखार के अलावा इस रोग में और कोई शारीरिक तकलीफ

नहीं होती। कई मर्तबा रोग इतने हलके रूप में होता है कि बुखार का पता भी नहीं चलता और शरीर पर दो-चार दानों में मामूली पानी भरकर सूख भी जाता है और इसे गर्मी के कारण निकलनेवाली फुंसियां समझ लिया जाता है।

वस्तुतः बड़ी माता (स्माल-पॉक्स) से यह रोग भिन्न होता है। लेकिन प्रायः पानी-भरे दानों के कारण इसे भी बड़ी माता ही समझ लिया जाता है। किन्तु दानों की शक्ल पर गौर करने से अन्तर पहचाना जा सकता है। चेचक के दाने पानी भरने के बाद बीच में से दबे हुए होते हैं और उनके किनारे उठे हुए और सुर्ख रहते हैं; जबकि चिकिन-पॉक्स के दाने न बीच से दबे रहते हैं, न उनके किनारों में उठाव ही होते हैं। इसके दाने वस्तुतः छालेनुमा होते हैं। इसके अलावा बुखार की तेज़ी और दूसरे शारीरिक लक्षण भी चिकिन-पॉक्स में नहीं होते।

इस रोग के इलाज की कोई खास ज़रूरत नहीं होती और न इसकी कोई खास दवा ही होती है। लेकिन यह बहुत छूतवाली बीमारी है। इसलिए रोगी को अलग रखना चाहिए और ठण्ड से बचाना चाहिए। एक बार होने के बाद यह रोग दोबारा नहीं होता।

ज़हरबाद

ज़हरबाद का मतलब है कि खून के अन्दर कीटाणुओं द्वारा उत्पन्न विष फैल जाना। जैसे शरीर के किसी भाग में बहुत बड़ा फोड़ा निकल आए अथवा कहीं अन्दर ही अन्दर मवाद पड़ जाए और मवाद के कीटाणुओं का विष खून में फैल जाए तो वह हालत ज़हर-बाद कहलाती है। बच्चा होने के बाद स्त्रियों को अक्सर ज़हरबाद हो जाता है। चूंकि बच्चा उत्पन्न होने के बाद स्त्रियों के गर्भाशय तथा दूसरे गुप्तांगों की हालत बिलकुल एक खुले ज़ख्म के समान होती है, उनमें रोग-कीटाणुओं का प्रवेश आसानी से हो जाता है। दुर्भाग्य से हमारे समाज में इस मौके पर सफाई और एहतियात कम रखी जाती है। प्रायः अशिक्षित परिवारों में इस मौके पर घर में बेकार समझे जाने-वाले गन्दे कपड़े इस्तेमाल किए जाते हैं, जिनके द्वारा कीटाणु-संक्रमण

हो जाता है। पहले ज़हरवाद से बहुत लोग मर जाते थे। लेकिन जब से सल्फा-ड्रग्स और एण्टी-बायटिक ओषधियों का आविष्कार हुआ है तब से ज़हरवाद करीब-करीब काबू में आ गया है।

ज़हरवाद की दशा में बुखार प्रायः सर्दी लगकर होता है जो खून में पहुंची हुई विष की मात्रा पर निर्भर करता है। असर हलका हो तो बुखार १०१° या १०२° तक ही जाता है, लेकिन तेज़ असर होने पर १०४-१०५° तक पहुंचता है। रोगी को खुश्की और प्यास बहुत लगती है, और पसीना भी काफी आता है। कभी-कभी कै भी हो जाती है। ऐसी हालत में फौरन डाक्टर को बुलाकर दिखाना चाहिए। इसमें किसी घरेलू उपचार की गुंजाइश नहीं होती। हां, रोगी के कपड़े-लत्तों की सफाई तथा सेवा-सुश्रूषा का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

दर्द

किसी भी अंग में दर्द होना एक बहुत ही सामान्य लक्षण है। और दर्द पैदा हो जाने पर हर आदमी इससे छुट्टी पाना चाहता है। लेकिन इस सबके बावजूद दर्द एक दृष्टि से बहुत अच्छी चीज़ है। क्योंकि दर्द के ज़रिये प्रकृति हमको यह चेतावनी देती है कि शरीर में कहीं कोई खराबी पैदा हो रही है, जिसकी ओर तुरन्त ध्यान देना चाहिए; अन्यथा देर करने से रोग भयानक रूप धारण कर सकता है। इसलिए प्रकृति की इस चेतावनी की ओर से विमुख नहीं होना चाहिए।

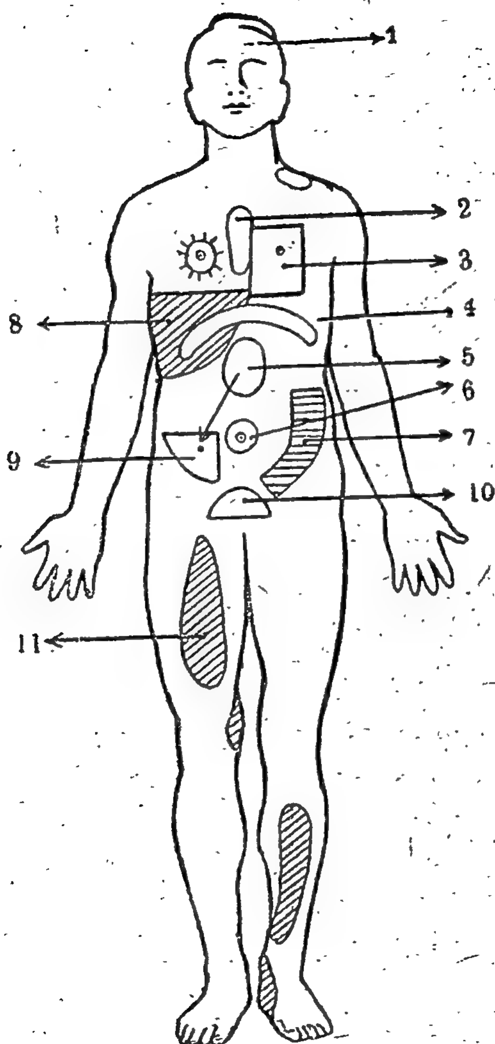
दर्द खुद कोई रोग नहीं होता, बल्कि हमेशा ही किसी न किसी रोग का लक्षण होता है। लेकिन सिर्फ इसी लक्षण-मात्र से बीमारी का पकड़ में आ जाना ज़रूरी नहीं होता, बल्कि रोग के सही निदान के लिए दूसरे लक्षणों, चिह्नों और कारणों को तलाश करना होता है। साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि दर्द किस किस्म का है—अर्थात् लगातार होता रहता है या कभी-कभी होता है; किस समय तेज़ होता है और किस समय मन्दा पड़ता है। कई बीमारियों में दर्द रात में तेज़ी पकड़ जाता है। कई रोगों में हवा लगने से दर्द बढ़ जाता है। कई दर्द गर्मी में और कई सर्दी में तेज़ होते हैं।

इसके अलावा भिन्न-भिन्न लोगों में दर्द की अनुभूति भी अलग-

अलग दर्जे की होती है। पिछड़ी जातियों के लोग दर्द को जहां हलके रूप में अनुभव करते हैं वहां सुसभ्य और पढ़े-लिखे व्यक्तियों की अनुभूति तीव्र होती है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में दर्द बरदाश्त करने की क्षमता कम होती है।

बहुत बार शरीर के जिस स्थान पर दर्द होता है रोग उससे काफ़ी दूर किसी दूसरे ही स्थान पर होता है। यह ज़रूरी नहीं है कि जहां दर्द हो उसके नीचे ही उसका कारण छिपा हो। कई बार पेट में महसूस होनेवाला दर्द फेफड़े की झिल्ली (आवरण) में सूजन आ जाने के कारण होता है। पित्त की थैली का दर्द दाहिने कन्धे में महसूस हो सकता है। और सिरदर्द तो बहुत-से रोगों के कारण होता है। उदाहरणार्थ, खून की कमी, ज़ुकाम-नज़ला, कब्ज़, स्त्रियों की जननेन्द्रियों के रोग, पेट की गैसें, इन सभी में सिरदर्द हो जाता है। इसलिए कहीं भी दर्द होने पर स्वयं उसका कारण तलाश करने के बजाय योग्य डाक्टर की सलाह लेना ही उचित है।

दर्दनाशक ओषधियां—दर्द से जल्दी से जल्दी छुट्टी पा लेने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। और नई-नई दर्दनाशक ओषधियों के विज्ञापन इस प्रवृत्ति को और बढ़ावा दे रहे हैं। कहना न होगा कि स्वास्थ्य के लिए यह प्रवृत्ति बहुत घातक है। क्योंकि इन दवाइयों से थोड़ा-बहुत आराम पाकर हम रोग का सही इलाज कराने की तरफ ध्यान नहीं देते। इस उपेक्षा से रोग बढ़ता रहता है और अन्ततोगत्वा बढ़कर काबू से बाहर हो जाता है। इसके अलावा ये ओषधियां हर मर्तबा काम भी तो नहीं करतीं। बहुत बार ये ओषधियां बनानेवाली कम्पनियों के विज्ञापन भी लोगों को गुमराह करते हैं। अखबारों के विज्ञापनों में दिखाया जाता है कि रोगी कमर पर हाथ रखे खड़ा है और कमर के दर्द से परेशान है। दूसरे चित्र में वह विज्ञापित ओषधि खाकर हंस रहा है। एक आम आदमी यह तो नहीं समझ सकता कि मेरी पीठ में यह दर्द किस कारण से हो रहा है। वह विज्ञापित ओषधि बाजार से लेकर खा लेता है। लेकिन उसे कोई लाभ नहीं होता। क्योंकि वह पीठ में होनेवाला दर्द तो उसके गुर्दों की खराबी के कारण है, जबकि ओषधि में सिर्फ स्नायविक पीड़ा



चित्र २१. शरीर का अग्रभाग

को ही दूर करने की क्षमता है। इसलिए हम अपने पाठकों को आगाह करना चाहेंगे कि छोटे-छोटे रास्ते न ढूंढ़कर सड़क के साफ रास्ते से चलना चाहिए। भले ही उस रास्ते से कुछ देर लगे, लेकिन आप उसमें भटकेंगे नहीं। खून की कमी से पैदा होनेवाले सिरदर्द में आप कितनी ही एस्प्रिन की पुड़िया या गोलियां खा लीजिए, वह तो तब तक नहीं मिटेगा जब तक कि आप खून बढ़ाने का उपचार नहीं करेंगे। इसके अतिरिक्त ये दर्दनाशक ओषधियां काफी हद तक दिल और दिमाग को भी कमज़ोर बना देती हैं। इसलिए योग्य डाक्टर की सम्मति लेनी चाहिए।

भिन्न-भिन्न अंगों का दर्द किन सम्भव कारणों से हो सकता है, पाठकों को काफी हद तक इसका आइडिया चित्र २१ और चित्र २२ से मिलेगा। इन दोनों चित्रों में शरीर के उन भिन्न-भिन्न स्थानों को क्रम से चिह्नित किया गया है जहां कि दर्द होने की सम्भावना हो सकती है। शरीर के अग्रभाग और पृष्ठभाग में होनेवाले दर्दों के कारण निम्नलिखित संकेत-तालिकाओं में क्रमानुसार दिए गए हैं :

अग्रभाग संकेत-तालिका (चित्र २१)

१. सिरदर्द—रक्त की कमी, पेट की खराबी, चोट, ज़ुकाम-नज़ले, स्त्री-जननेन्द्रियों के रोग से।

२. छाती की हड्डी के नीचे का दर्द—पेट के रोग, हड्डी के विकार, हृदय के रोग, फेफड़े के रोग से।

३. दिल के सामने दर्द—अजीर्ण, खून की कमी, पेट की वायु से।

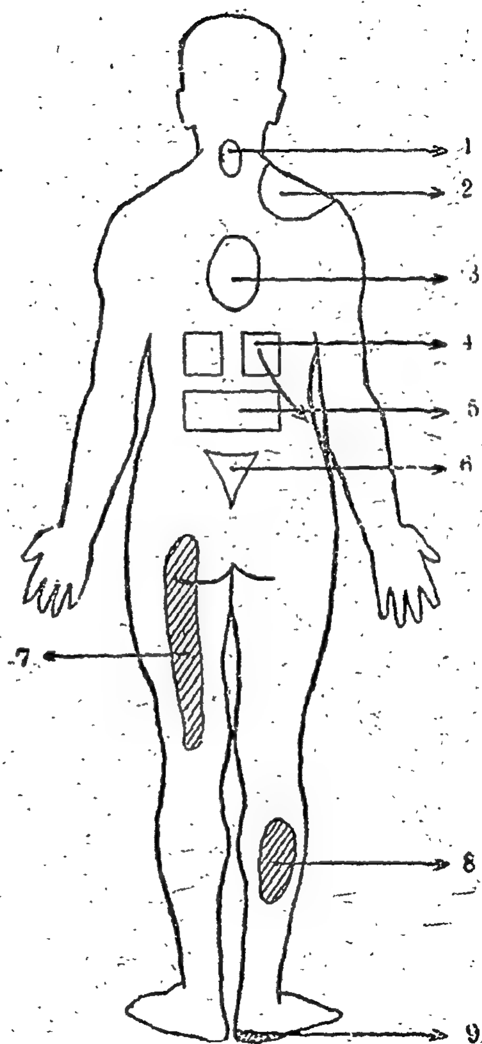
४. महाप्राचीरा में दर्द—ज़्यादा खांसने से, कै होने से, फेफड़ों की झिल्ली की सूजन से।

५. आमाशय में दर्द—बदहज़मी, पेट के ज़ख्म, न्यूमोनिया, जिगर की पथरी से।

६. नाभि पर दर्द—पेचिश, उदर की गांठें बढ़ने, न्यूमोनिया, रीढ़ की हड्डी के रोग से।

७. उदर के बायीं ओर दर्द—कब्ज, 'कालिक' और पेचिश से।

८. दाहिनी ओर उदर के ऊपर दर्द—जिगर की सूजन, जिगर



चित्र २२. शरीर का पृष्ठभाग

की पथरी, न्यूमोनिया और प्लूरसी से।

९. उदर के दाहिने कोने में दर्द—एपैण्डिसाइटिस से (कई बार दर्द की शुरुआत चित्र में अंकित ५ और ६ नं० स्थानों से होती है)।

१०. पेड़ू में दर्द—मसाने के रोग, गुर्दे के कुछ रोगों और स्त्रियों में गर्भाशय के विकार से।

११. जंघा में दर्द—स्नायविक पीड़ा, गर्भाशय और डिम्ब-ग्रन्थि के विकार से।

पृष्ठभाग संकेत-तालिका (चित्र २२)

१. गर्दन का दर्द—वायु-पीड़ा और गर्दनतोड़ बुखार से।

२. कन्धे में (दाहिनी ओर) दर्द—जिगर की पथरी, न्यूमोनिया और प्लूरसी आदि दूसरे रोगों से (स्नायु-पीड़ा किसी भी ओर हो सकती है)।

३. कन्धों के बीच में दर्द—रियूमैटिज्म के दर्द, जिगर और पित्त की थैली के रोगों से।

४. कमर में दर्द—गुर्दे के दर्द से।

५. बीच कमर में दर्द—लम्बेगो कब्ज, थकावट, बुखार, स्त्रियों में कष्टरजता तथा पुरुषों में गुर्दे के रोगों से।

६. नितम्बों के ऊपर दर्द—गर्भाशय और डिम्ब-ग्रन्थियों के रोगों, गुदा के रोगों, जैसे बवासीर, स्नायविक पीड़ा और वायु-पीड़ा से।

७. जंघा के पिछले भाग में दर्द—गृध्रसी वायु, कब्ज, कूल्हे की सूजन से।

८. पिण्डली में दर्द—थकावट, रक्ताल्पता और स्नायुपीड़ा से।

९. एड़ी में दर्द—चोट के कारण, रियूमैटिक पीड़ा से।

अतिसार-प्रधान रोग

अतिसार-प्रधान रोगों से मतलब ऐसे रोगों से है जिनमें दस्त होना प्रमुख लक्षण होता है। संस्कृत में अतिसार का अर्थ दस्त होना है। अतः अतिसार भी खुद कोई रोग न होकर लक्षण-मात्र ही है।

और यह लक्षण अनेक कारणों से हो सकता है, जैसे हैजे के प्रभाव से, पेचिश के प्रभाव से, मौसम के प्रभाव से तथा विष के प्रभाव से। लेकिन रोग-निदान के सम्बन्ध में एक बात इस लक्षण से ज़रूर निश्चित हो जाती है कि रोग उदर (आंतों) में है। भिन्न-भिन्न कारणों की चिकित्सा भी अलग-अलग ही होती है। वस्तुतः इलाज का एकमात्र उद्देश्य दस्तों को रोक देना नहीं होता, वरन् मुख्य कारण को दूर करना होता है।

अतिसार की प्रक्रिया को समझने के लिए यहां ज़रा आंतों की बनावट को समझ लेना ज़रूरी होगा। हमारी आंतें एक लम्बी नली के समान होती हैं। इनका भीतरी हिस्सा मखमल के समान मुलायम और कोमल झिल्ली का बना होता है। आंतों में हर समय एक प्रकार की हरकत होती रहती है जिसके कारण भोजन आगे बढ़ता रहता है। अतिसार की हालत में आंतों की कोमल झिल्ली उत्तेजित हो जाती है और उनकी स्वाभाविक हरकत बढ़ जाती है। इसलिए उनके भीतर जल, भोजन आदि जो कुछ भी चीज़ होती है वह ज़्यादा देर तक अन्दर नहीं ठहर पाती और दस्त की शक्ल में बाहर निकलती रहती है। झिल्ली की यह उत्तेजना और आंतों की हरकत में वृद्धि अनेक कारणों से हो जाती है। आगे कई प्रकार के सामान्यतः होनेवाले अतिसार-प्रधान रोगों का वर्णन किया जा रहा है।

गर्मी के दस्त

गर्मी के दस्त आम तौर पर गर्मी का मौसम शुरू होने पर होते हैं। यूं तो गर्मी के दस्त बच्चों को अधिक होते हैं, लेकिन बड़े आदमी भी प्रायः इनके शिकार हो जाते हैं। गर्मी का प्रभाव आंतों पर हो जाने के कारण वहां की श्लेष्मल कला (झिल्ली) उत्तेजित हो उठती है। ऐसे दस्त किसी कीटाणु के प्रभाव के कारण नहीं होते, सिर्फ मौसम के असर के कारण होते हैं। प्रधान रूप से पेट में गर्मी बढ़ने का कारण होता है—नये अनाज का सेवन। जेठ-बैसाख के महीने से लोग नये गेहूं और चने खाने शुरू कर देते हैं जो काफी गर्म होते हैं और अक्सर अतिसार पैदा कर देते हैं। भोजन भी शरीर में गर्मी पैदा करता

है। अतः वार्ज़ मर्तबा अधिक खा लेने से भी अधिक गर्मी पैदा हो जाती है और दस्त लग जाते हैं। ऐसी हालत में गर्मी मुंह तक भी अपना प्रभाव दिखाती है और मुंह में छाले हो जाते हैं या मुंह आ जाता है। गर्मी के दस्त कभी ढीले और कभी पतले होते हैं और चौबीस घण्टे में छः-सात दस्त हो जाया करते हैं।

ये दस्त कोई विशेष चिन्ता की चीज़ नहीं होते और साधारण घरेलू उपचारों से ही ठीक हो जाते हैं। इनके लिए निम्नलिखित उपायों से लाभ हो जाता है :

- रोटी-दाल न खाकर दही के साथ खिचड़ी खानी चाहिए।
- ज़्यादातर खुराक तरल रूप में लेनी चाहिए—जैसे नीबू की शिकंजी, मौसमी, सन्तरा, अनार जैसे फलों के रस; दही की लस्सी।
- छः-छः माशे 'लवण भास्कर' चूर्ण दिन में दो-तीन वार दही में मिलाकर खाने से वहुत लाभ होता है। यह मात्रा जवान आदमी के लिए है।
- दोपहर में आराम करने के समय ठण्डे पानी में भिगोया हुआ गीला तौलिया पेट पर दो घण्टे रखने से पेट की गर्मी वहुत कम हो जाती है।
- दस्तों की हालत में दूध नहीं पीना चाहिए।

उपर्युक्त उपचारों से अगर दस्त ठीक न हों तो फिर डाक्टर की सलाह लेनी चाहिए।

सर्दी के दस्त

गर्मी की तरह ही सर्दी भी आंतों पर असर करती है और दस्त पैदा कर देती है। सर्दी के प्रभाव से आंतों की लगभग वही हालत हो जाती है जोकि जुकाम में गले और नाक की होती है। दस्तों के साथ पतला-चिकना बलगम-सा आता है। जाड़ों के मौसम में तो सर्दी का असर हो ही सकता है; लेकिन कई वार गर्म जगह से एकदम ठंडे स्थान पर आना, गीले और सीलनदार स्थानों पर अधिक देर बैठना, बारिश में अधिक भीगना या ज्यादा देर तक गीले कपड़ों में रहना

आदि बातों से भी आंतों में ठंड बैठकर दस्त हो जाते हैं। लेकिन ऐसा ज़्यादातर दुर्बल स्वास्थ्य के लोगों के साथ होता है।

ये सर्दी के दस्त भी एक-दो दिन में प्रायः ठीक हो जाते हैं। अदरक की चाय पीना अथवा गर्म पानी में थोड़ी-सी ब्राण्डी डालकर पी लेना लाभ करता है।

उत्तेजक भोजन से दस्त

उत्तेजक भोजन उसे कह सकते हैं जो आंतों की झिल्ली में उत्तेजना पैदा कर दे—जैसे तेज़ मिर्चें; अथवा ऐसा भोजन जो आंतें हज़म न कर पाएं—जैसे कोई कच्चा फल, खराब पकी हुई सब्ज़ी, मछली का सख्त छिलका, शराब इत्यादि। इस प्रकार के न पचनेवाले भोजन के आंतों में पहुंच जाने पर आंतें उसे प्राकृतिक रूप से बाहर निकालने की कोशिश करती हैं। क्योंकि वह पदार्थ उनके लिए एक विजातीय द्रव्य ही होता है। कई बार तो पेट में पहुंचने पर पेट ही उसको वमन (कै) के ज़रिये बाहर फेंक देता है। लेकिन यदि किसी तरह वह पेट से निकलकर आंतों में पहुंच जाता है तो दस्तों के ज़रिये आंतें उसे बाहर निकालती हैं। और जब तक वह विजातीय वस्तु बाहर नहीं निकल जाती, दस्त बराबर होते रहते हैं।

वास्तव में ऐसी हालत में दस्तों को रोकना नहीं चाहिए, बल्कि प्रकृति जिस विजातीय द्रव्य को बाहर निकाल रही है, हमें उसमें उसकी मदद करनी चाहिए। जब वह विजातीय द्रव्य बाहर निकल जाता है तो दस्त प्रायः खुद-ब-खुद ही ठीक हो जाते हैं।

उत्तेजना के कई बार और भी कारण होते हैं—जैसे खाने-पीने की वस्तुओं की गन्दगी भी उत्तेजना पैदा कर देती है। खाने-पकाने के बर्तनों में कराई हुई कच्ची कलई भी बहुत बार ऐसी उत्तेजना पैदा कर देती है। कई बार जलवायु परिवर्तन का असर भी उत्तेजनात्मक होता है। खास तौर पर मृदु (हलके) पानीवाले इलाकों के लोग जब भारी पानीवाले इलाकों में पहुंच जाते हैं तो यह पानी की बदल उत्तेजना पैदा कर देती है। ऐसी हालत में पानी को उबालकर पीने से यह शिकायत दूर हो जाती है।

इस प्रकार उत्तेजना के कारण पैदा हुए दस्त एक-दो दिन में खुद ही ठीक हो जाते हैं। लेकिन अगर ये अधिक समय तक रहें और तकलीफदेह होने लगें तो डाक्टर को दिखाना चाहिए।

भोजन-विष (फूड-पायज़निंग)

'भोजन-विष' से तात्पर्य खाने में मिले हुए किसी ज़हर से नहीं है, जोकि कभी-कभी दूसरों की हत्या करने के लिए या आत्महत्या करने के लिए प्रयोग किया जाता है; बल्कि इसका अर्थ है भोजन में विषैले तत्त्व पैदा हो जाना। और ये तत्त्व प्रायः तब पैदा होते हैं जबकि कुछ विशेष प्रकार के कीटाणुओं द्वारा भोजन ज़हरीला बना दिया जाता है। मांस, दूध तथा दूध से बने दही, रबड़ी आदि पदार्थों तथा अन्य खाद्यों में इन कीटाणुओं के हमले का ज़्यादा खतरा रहता है। मछली तो खास तौर पर इन कीटाणुओं के हमले का शिकार होती है। साथ ही यह खतरा तब और भी बढ़ जाता है जबकि किसी जगह मछली दूर-दूर के स्थानों से कई-कई दिन बाद पहुंचती हो। यह ज़रूरी नहीं होता कि कीटाणुओं द्वारा आक्रांत मांस में से कोई दुर्गन्ध आए ही; मांस या मछली देखने में ठीक मालूम देते हुए भी कीटाणु-युक्त होते हैं। इसीलिए डाक्टर लोग मांस को अच्छी तरह धोकर साफ करने के बाद खूब पकाकर खाने की सलाह देते हैं।

भोजन-विष के असर से प्रायः बड़े गम्भीर लक्षण पैदा हो जाते हैं। भोजन करने के कुछ देर बाद ही तकलीफ शुरू हो जाती है। कै, दस्त, पेट में दर्द, सिर में चक्कर आने लगते हैं। ठण्डे पसीने आते हैं, नब्ज़ कमज़ोर पड़ जाती है और रोगी मरणासन्न दिखाई देने लगता है। रोगी के ये लक्षण बिलकुल हैज़े से मिलते-जुलते होते हैं और बहुत बार डाक्टर भी इन दोनों रोगों का अन्तर नहीं समझ पाते। निश्चयात्मक निदान के लिए रोगी के पाखाने की रासायनिक जांच करनी होती है। बहरहाल, इस तरह के गम्भीर लक्षण होने पर रोगी को फौरन अस्पताल दाखिल करा देना चाहिए या होशियार डाक्टर की देख-रेख में रखना चाहिए। अधिकांश रूप में ऐसे रोगियों को नस के ज़रिये ग्लूकोज़ और नमक का पानी चढ़ाना पड़ता है जोकि डाक्टर

ही कर सकता है। ऐसे मामलों में घरेलू इलाज के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए।

एक ही दुकान से दूध या मांस खरीदनेवाले मोहल्ले के बीसियों लोगों में भोजन-विष के असर से ऐसे लक्षण बनते देखे गए हैं। कई बार जब विष का असर बहुत हलका होता है तो लक्षण भी हलके होते हैं; लेकिन सुरक्षा के ख्याल से रोगी को अस्पताल भेजना ही ज़्यादा मुनासिब होता है।

इसके अतिरिक्त कुछ बेमेल भोजनों से भी कुछ ऐसी रासायनिक क्रिया होती है कि कै-दस्त हो जाते हैं—जैसे खरबूज़े के साथ दूध पीना; तरबूज़ खाकर शर्बत पीना और आमों के ऊपर डटकर पानी पी लेना। लेकिन इनसे ज़्यादा गम्भीर लक्षण नहीं होते। परन्तु इसकी एहतियात करनी ज़रूरी है।

हैज़ा

हैज़े के नाम से तो लोग आम तौर से परिचित हैं। लेकिन इस रोग से परिचय प्रायः बहुत कम लोगों को होता है। सामान्य रूप से कै-दस्त हो जाने को हैज़ा कह दिया जाता है। लेकिन सिर्फ कै-दस्त हो जाने का अर्थ ही हैज़ा नहीं होता। हैज़ा दरअसल 'कॉमा बैसलेस' नाम के कीटाणु से होता है। हैज़े में कै-दस्त ज़रूर होते हैं, लेकिन विशिष्ट प्रकार के।

हैज़ेवाले रोगी की कै में पानी निकलता है और उसके दस्त बिलकुल चावलों के माड़ की तरह गदलापन लिए हुए सफेद होते हैं। उनमें छोटे-छोटे छिछड़े-से तैरते दिखाई देते हैं। हैज़े के दस्तों में पाखाने का स्वाभाविक पीलापन कभी नहीं होता। कभी-कभी शुरू में पीले और पतले दस्त आते हैं और बाद को सफेद पड़ जाते हैं। लेकिन जब रोग का असर एकदम होता है, तो शुरू से ही दस्त सफेद होते हैं। रोगी का पेशाब बन्द हो जाता है और पिण्डलियों में ऐंठनी और कटन होने लगती है। ठण्डे पसीने आते हैं, और रोगी मरणासन्न स्थिति में पहुंच जाता है।

यह एक से दूसरे को लगनेवाली बीमारी है और प्रायः क्षेत्रीय

रूप में और कभी-कभी जनपदव्यापी रूप में फैलती देखी जाती है। रोग के कीटाणुओं का प्रवेश शरीर में हमेशा मुंह के द्वारा होता है। और प्रायः यह रोग गर्मी के दिनों में फूटता है। रोगी की कै और दस्त दोनों में ही रोग के कीटाणु रहते हैं। रोगी की सेवा करनेवाले तीमारदार की अंगुली के पोरुओं में कीटाणु लग जाते हैं और यदि हाथों को बिना अच्छी तरह साफ किए वह खाना खा ले तो उसे भी हैज़ा हो जाएगा। रोगी के कै-दस्त पर बैठी हुई मक्खियां जिस भोजन पर भी बैठेंगी उसपर हैज़े के कीटाणु छोड़ जाएंगी। रोगी के कै-दस्तों की छींटें यदि किसी बर्तन या भोजन पर जा पड़ेंगी तो वह भी कीटाणु-युक्त हो जाएगा। यदि कुएं पर हैज़े के रोगी के कपड़े धोए जाएंगे तो कुएं का पानी गन्दा हो जाएगा है। कई बार बहते हुए नदी या नहर के पानी में रोगी की टट्टी या टट्टी से सने कपड़े धोने से वहां का पानी भी गन्दा हो सकता है।

इसलिए हैज़े के दिनों में सरकार की ओर से कुओं में लाल दवा डाली जाती है। पानी को उबालकर पीने की हिदायत दी जाती है, और मक्खियों से बचने का प्रचार किया जाता है। अव्वल तो हैज़े के रोगी को घर पर न रखकर अस्पताल पहुंचाना चाहिए और यदि घर पर ही रखना पड़े तो उसके पास सिर्फ एक ही तीमारदार रहे। उसे अपने मुंह पर पट्टी बांध लेनी चाहिए। खाने-पीने में बेहद एहतियात रखनी चाहिए।

हैज़े के इलाज के बारे में जनसाधारण में बहुत-सी भ्रम-धारणाएं फैली हुई हैं। आम तौर पर लोग यह समझते हैं कि हैज़े के मरीज़ को पानी नहीं देना चाहिए। यहां तक कि बहुत-से पुराने ढंग के वैद्य और हकीम भी इस भ्रम-धारणा के शिकार हैं और वे हैज़े के रोगी का पानी बन्द कर देते हैं। लेकिन वैज्ञानिक दृष्टि से रोगी को ज्यादा से ज्यादा पानी पिलाने की कोशिश करनी चाहिए; क्योंकि उसके शरीर का पानी तो कै-दस्तों के रास्ते बेहद कम हो चुका होता है। और मनुष्य शरीर में $\frac{२}{३}$ भाग पानी होता है। पानी की कमी से ही रोगी का पेशाब बन्द हो जाता है। हैज़े की दशा में नीबू की नमकीन शिकंजी बर्फ डालकर पिलानी चाहिए। हैज़े में पानी की कमी को पूरा

करने के लिए ही नस के ज़रिये ग्लूकोज़ का पानी शरीर में चढ़ाया जाता है।

कुछ लोग प्याज़ के अर्क को हैज़े की अचूक दवा मानते हैं और रोगी को दनादन प्याज़ का अर्क पिलाने लग जाते हैं। लेकिन ज़्यादा प्याज़ का अर्क उत्तेजनात्मक सावित होता है और बाज़ मर्तबा दस्त बढ़ा देता है। लेकिन कई बार लोग यह दावा करते हैं कि हमने अमुक केस में प्याज़ का अर्क पिलाया और दो घंटे में कै-दस्त बन्द हो गए। ऐसे केसों में रोग हैज़ा नहीं होता बल्कि वे अपच के कै-दस्त होते हैं जो प्याज़ या अदरक के पाचक गुण से ठीक हो जाते हैं।

हैज़ा काफी खतरनाक और जल्दी बढ़नेवाली बीमारी है। इसमें घरेलू इलाज के भरोसे नहीं रहना चाहिए। रोगी को फौरन या तो अस्पताल पहुचाएं या योग्य डाक्टर की देखरेख में रखें। घर के दूसरे व्यक्तियों से रोगी का पूरा बचाव रखना चाहिए और बाद को रोगी की इस्तेमालशुदा चीज़ें जैसे बर्तन आदि पानी में एक घण्टा खौलाकर इस्तेमाल में लानी चाहिए और कपड़ों को जहां तक हो जला देना चाहिए।

पेचिश

पेचिश का रोग सामान्य रूप से लोगों को हो जाता है; लेकिन यह काफी तकलीफदेह और मनहूस बीमारी है। इस रोग में उदर में नाभि के आसपास ऐंठनी और दर्द होता है और रोगी को ज़रा-ज़रा देर बाद टट्टी की हाजत महसूस होती है। दर्द उठने पर ऐसा मालूम होता है कि बड़े ज़ोर से बहुत सारा पाखाना निकलेगा; लेकिन थोड़ा-सा पतला चिकना बलगमनुमा पानी आकर रह जाता है, जो कभी सफेद होता है और कभी खून मिला हुआ लाल होता है। रोग की तीव्र दशा में बीमार की हालत यह हो जाती है कि उसे घड़ी-घड़ी बाद लोटा लेकर पाखाने को भागना पड़ता है और हर बार ऐंठनी के साथ थोड़ी आंव निकलती है। यह दो प्रकार की होती है अर्थात् दो तरह के कीटाणु इसका कारण होते हैं। पहली को 'एमीबा' नामक कीटाणु के नाम पर 'एमिबिक डिसैन्ट्री' कहा जाता है। दूसरी

एक 'वैसलस' नामक कीटाणु के कारण होती है और उसे 'वैसलरी डिसैन्ट्री' कहते हैं। लेकिन लक्षण दोनों के प्रायः एक ही होते हैं। अलवत्ता इलाज में कुछ अन्तर होता है।

कई वार दस्त भी पेचिश में वदल जाते हैं या यूं कहना चाहिए कि दस्त पेचिश का पूर्वरूप होते हैं। पेचिश अक्सर पुरानी भी पड़ जाती है। जव महीने दो महीने लगातार पेचिश रह जाती है तव वह पुरानी कहलाने लगती है। अवश्य ही पुरानी हो जाने पर रोगी को इतनी जल्दी दस्त नहीं आते जैसाकि तीव्र अवस्था में होता है। लेकिन पुरानी पेचिश का रोगी दुर्बल वहुत हो जाता है।

पेचिश की कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। हमेशा तत्परता से इसका इलाज कराना चाहिए। क्योंकि इसके फलस्वरूप आंतों की सूजन, जिगर की सूजन, जिगर का फोड़ा, रक्त की कमी, हाथ-पैरों की सूजन और यहां तक कि आंतों की दिक तक हो जाती है। आजकल पेचिश की काफी सफल चिकित्सा उपलब्ध है; फिर भी कुछ पुरानी घरेलू ओषधियों का महत्त्व इस रोग में अव भी वैसा ही है। ईसवगोल की भूसी, ईसवगोल के बीज (पानी में भिगोकर लुआव उठने पर) और आंतों की अधिक उत्तेजना की हालत में कास्ट्रैल (अरण्डी का तेल) अत्यन्त लाभकारी है। खुराक में दही-चावल या खिचड़ी लाभदायक होते हैं।

संग्रहणी (स्प्रू)

इस रोग की दशा में मरीज को सुवह से दोपहर तक तीन-चार या पांच पीले, भारी और ढीले दस्त हो जाते हैं। रोगी का वजन घटने लगता है और वह कमजोर होता चला जाता है। भूख मर जाती है; तवियत गिरी-पड़ी रहती है, शरीर में खून की कमी हो जाती है।

इस रोग का विलकुल सही कारण तो अभी मालूम नहीं हो सका है, लेकिन इतना जरूर मालूम हो गया है कि भोजन में विटामिन 'वी' तथा लौह जैसे पोषक तत्त्वों की कमी के कारण यह रोग उत्पन्न हो जाता है। कई वार पुराने रोगों के फलस्वरूप और कभी अतिसार और पेचिश भोगने के वाद रोगी संग्रहणी का शिकार हो जाता है।

जहां तक इलाज का प्रश्न है इस रोग की सफल चिकित्सा मौजूद है। आयुर्वेदीय वैद्य लोग इसमें पर्पटी नामक औषध देकर रोगी को पांच-पांच और दस-दस सेर तक दही पिलाते हैं। आयुर्वेद की यह चिकित्सा काफी सफल चिकित्सा मानी जाती है। डाक्टरी ओषधियां भी इस रोग में काफी अच्छा काम करती हैं और प्रधान रूप से पोषणात्मक ओषधियां होती हैं। बकरे के जिगर का शोरबा इसकी खास दवा है। अब इस औषध को इन्जैक्शनों द्वारा शरीर में पहुंचाया जाता है। रोग पुराना होने पर घातक हो सकता है अतः इलाज में कभी लापरवाही नहीं करनी चाहिए।

विभिन्न शारीरिक व्याधियां

हृदय और उसके रोग

हृदय का दूसरा प्रचलित नाम है 'दिल'। बहुत बार बातचीत के सिलसिले में हम ऐसे वाक्य बोलते हैं जिनसे ऐसा आभास मिलता है कि 'दिल' कोई सोचने-विचारने का अंग है। जैसे—'मैंने अपने दिल में यह सोचा'—'दिल ने इस बात को माना नहीं'—'अमुक बात को मेरा दिल कर रहा था' इत्यादि। कदाचित् बहुत-से व्यक्ति जिन्हें कि शरीर-निर्माण का ज्ञान नहीं है—सचमुच 'दिल' को एक सोच-विचारवाली इन्द्रिय समझते हैं, जबकि यह सब काम दिमाग का होता है। शरीर में दिल का काम सारे बदन में शुद्ध खून पहुंचाना और गन्दे खून को फेफड़ों के ज़रिये शुद्ध करना है। सोच-विचार की क्रिया से वस्तुतः दिल का कोई ताल्लुक नहीं होता। लेकिन दिल का काम शरीर के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण है और इसे शरीर का राजा भी कहा जाता है। यह अपनी पम्प जैसी क्रिया द्वारा प्रतिदिन शरीर में चार हज़ार गैलन खून 'पम्प' कर डालता है जोकि धमनियों के ज़रिये शरीर के हरएक बारीक से बारीक हिस्से में पहुंचता है। दिल का साइज़ लगभग हमारी बंधी हुई मुट्ठी के बराबर होता है। यह छाती में बायीं ओर पसलियों के नीचे रहता है, जहां से उसके धड़कने की

आवाज सुनाई देती है। यह आवाज खून को पम्प करने की क्रिया से पैदा होती है। दिल बहुत मजबूत किस्म की मांसपेशियों का बना हुआ होता है और दिल की इन पेशियों को 'कारनरी धमनी' के जरिये खून पहुंचता रहती है। दिल की हिफाजत के लिए इसके ऊपर झिल्ली की दो परतें चढ़ी रहती हैं। दिल के भीतर चार कमरे होते हैं जिनमें से दो में शरीर का इस्तेमाल किया हुआ गन्दा खून आता है और रक्तवाहिनी नलिकाओं के जरिये फेफड़ों में साफ होने के लिए चला जाता है। दूसरे दो कमरों में फेफड़ों से साफ किया हुआ खून आता है और दूसरी रक्तवाहिनी नलिकाओं (धमनियों) के जरिये शरीर के हर हिस्से में पहुंचा दिया जाता है। गन्दे खून को लानेवाली नलिकाएं शिराएं कहलाती हैं और शुद्ध खून पहुंचानेवाली धमनियां। शरीर में इन रक्तवाहिनियों का बहुत बड़ा जाल फैला हुआ है। दिल के इन कमरों में कपाट (किवाड़) लगे होते हैं, ताकि गन्दा और शुद्ध खून मिल न पाए। एक स्वस्थ व्यक्ति का दिल एक मिनट में ६० से ६० बार तक धड़कता है।

दिल के रोग कई तरह के होते हैं और दिल के साथ ही शरीर के दूसरे महत्त्वपूर्ण अंग जैसे रक्तवाहिनियां और गुर्दे भी बीमारी का शिकार बनते हैं। कई बार दूसरे-दूसरे रोग—जैसे रियूमैटिक फीवर अथवा दूसरे तीव्र ज्वर—भी हृदय के रोग पैदा कर देते हैं। दरअसल हृदय के रोगों का पता लगाना और उनका सही निदान करना कोई मामूली बात नहीं होती। बहुत विद्वान, अनुभवी और स्पेशलिस्ट डाक्टर ही इनका पता लगा पाते हैं। दिल की बीमारियों की दशा में जो लक्षण पैदा होते हैं, वे खतरे की घण्टी माने जाते हैं, लेकिन कई बार दूसरे-दूसरे रोगों में भी वैसे ही लक्षण पैदा होते हैं जो बिलकुल भी खतरनाक नहीं होते; और इनका अन्तर एक योग्य डाक्टर ही समझ सकता है। अब इस प्रकार के यन्त्र और परीक्षण-विधियां निकल आई हैं कि दिल के रोगों का निदान अपेक्षाकृत सरल हो गया है।

संक्षेप में—थोड़ी मेहनत से सांस फूलना, हाथ-पैरों की सूजन और दिल की धड़कनों का बढ़ जाना—ये आम तौर पर दिल की बीमारी के लक्षण होते हैं। बायीं पसलियों के नीचे का दर्द जो बायीं भुजा तक

फैल जाए अथवा गर्दन की ओर को जाए, दिल की 'एन्जाइना पैक्टोरिस' नामक बीमारी का लक्षण होता है जोकि काफी खतरनाक होती है। लेकिन कई वार वदहज़मी के कारण हृदय के क्षेत्र में दर्द पैदा हो जाता है और इस दर्द से कोई भी नुकसान नहीं पहुंचता। जनसाधारण प्रायः वहुत-से परेशानी करनेवाले लक्षणों को भी दिल की वीमारी समझ वैठते हैं। पहली वार पड़नेवाले हिस्टीरिया, मिरगी या वेहोशी के दौरे को घर के लोग दिल का दौरा समझ वैठते हैं।

जिसे आम तौर पर डाक्टर लोग दिल का दौरा कह देते हैं—वह दिल की पेशियों को खून पहुंचानेवाली नलियों में खरावी आ जाने के कारण होता है। अर्थात् किसी वड़ी नली जैसे 'कारनरी धमनी' में अटकाव आ जाना। ऐसी सूरत में दिल की पेशियों में खून कम पहुंचता है, फलतः दिल का काम कमज़ोर पड़ जाता है और शरीर को आक्सीजन नामक शुद्ध वायु कमी के साथ मिलती है। इस रोग में रोगी फौरन मर भी सकता है और वहुत वार जव वीमारी लम्वी पड़ जाती है तो वच भी जाता है। इस रोग की हालत में विस्तर पर लेटकर पूरा आराम करना वड़ा ज़रूरी होता है। हृदय के रोग प्रायः अधेड़ और वृद्धावस्था में ही अधिक होते हैं। युवावस्था में तो विरले ही देखे जाते हैं। ऊंचे रक्तचाप (हाई व्लड-प्रैशर) की हालत में यह रोग प्रायः हो जाता है।

दिल फेल होना—अर्थात् दिल का रुक जाना; इस दशा को अंग्रेज़ी में 'हार्ट फेल' होना कहते हैं और यह शव्द अव एक आम शव्द हो गया है। हार्ट फेल होना दरअसल खुद कोई वीमारी नहीं है, वल्कि इस वीमारी का राज़ यह है कि किसी भी रोग के कारण, जैसे रियूमैटिक फीवर, व्लड-प्रैशर, आतशक अथवा अन्य कारणों से जव दिल काम करने के अयोग्य हो जाता है तो वह अपना काम छोड़ देता है। हालांकि हार्ट फेल होना एक गम्भीर वात है, लेकिन फिर भी अव ऐसे उपचार निकल आए हैं कि ऐसे रोगियों को वचाया जा सकता है। हार्ट फेल होने की दशा में रोगी तड़ाक-फड़ाक मर जाता हो ऐसा सोचना गलत होता है। हार्ट फेल होने की नौवत आने पर रोगी को सांस लेने में कठिनाई होने लगती है। श्वास छोटे पड़ने

लगते हैं। बेचैनी होने लगती है। निश्चय ही ये लक्षण खतरे की घण्टी होते हैं।

इसके अतिरिक्त हृदय के कपाटों के रोग, उसकी दीवारों और झिल्ली के रोग, सब मिलाकर बीस-बाईस प्रकार के हृदय-रोग होते हैं। इन रोगों की जरा भी उपेक्षा न करके रोगी को होशियार डाक्टर की देख-रेख में रखना चाहिए। सामान्यतया निम्नलिखित लक्षण हृदय-रोगों के संकेत होते हैं; इनके पैदा होने पर सावधान हो जाना चाहिए :

- बहुत मामूली मेहनत से सांस फूलना।
- छाती के बायीं ओर खिंचाव अथवा दर्द जो बायें बाज़ू में फैल जाए।
- उदर अथवा पैर के टखनों पर सूजन।
- सिर में चक्कर आना और सिर खाली महसूस होना।
- एक चीज़ की दो दिखाई देना (खतरनाक लक्षण)।
- लगातार सिर दुखना।
- बिना किसी स्पष्ट कारण के थकावट और कमजोरी बढ़ना।

रक्तचाप-वृद्धि (हाई ब्लड-प्रेशर)

रक्तचाप के माने हैं खून का दबाव। इस दबाव की जांच के लिए डाक्टर आपकी बाज़ू में एक पट्टी-सी लपेटता है और फिर उसके साथ रबड़ की नली से जुड़ी हुई गेंद को दबा-दबाकर उस खोखली पट्टी में हवा भरता है। और फिर स्टेथिस्कोप को बाज़ू पर रखकर आवाज़ सुनता है। इस पट्टी के साथ एक दूसरी नली से एक बक्स और जुड़ा रहता है, जिसमें पैमाना लगा रहता है; और बीच की नली में पारा भरा रहता है जो उठकर और गिरकर खून का दबाव बताता है।

यहां यह सवाल हो सकता है कि खून का दबाव क्या चीज़ है? शरीर की धमनियों (शुद्ध रक्त की नलिकाओं) में खून एक झटके या धक्के के साथ चलता है। दबाव से मतलब उस धक्के से है जो खून धमनियों की दीवारों पर मारता है। नब्ज़ एक धमनी है। आप उसपर हाथ रखकर देखिए—वह एक खास गति से धड़कती है।

दवाव तव ज़्यादा होता है जवकि दिल का वायें कोने का कमरा सिकुड़ता है। इस क्रिया को 'सिस्टोल' कहते हैं। इसके विपरीत जब दिल ज़रा एक लहमे के लिए आराम करता है जिसे कि 'डायस्टोल' कहते हैं तो दवाव वहुत कम होता है। इसलिए खून का दवाव मापते समय 'सिस्टोलिक' और 'डायस्टोलिक' दोनों तरह का दवाव देखा जाता है। एक वीस-पच्चीस साल के युवक का 'सिस्टोलिक दवाव' लगभग १२० होता है और 'डायस्टोलिक' दबाव ८० के करीव होता है। फिर भी भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में यह दबाव भिन्न-भिन्न ही मिलता है जो उनके लिए स्वाभाविक होता है। इसके अलावा भिन्न-भिन्न शारीरिक और मानसिक परिस्थितियों में एक ही व्यक्ति का दवाव भी भिन्न-भिन्न हो जाता है। मिसाल के लिए किसी तरह की भी उत्तेजना की हालत में दवाव ऊंचा चढ़ जाता है। साधारण तौर पर उम्र वढ़ने के साथ ही साथ खून का दवाव भी वढ़ता है। और अगर शरीर मोटा हो जाए और उसका वज़न वढ़ जाए तव भी दवाव में वृद्धि हो जाती है। खून का यह दवाव वढ़ने और घटने के वहुत सारे कारण होते हैं। कुछ लोगों का मिज़ाज या शारीरिक गठन ही ऐसा होता है कि उनका दवाव काफी घटा हुआ रहता है और यह स्थिति उनके लिए स्वाभाविक होती है। कई वार चोट वगैरा लग जाने से जव शरीर से वहुत ज़्यादा खून निकल जाता है तो रक्त का दवाव वहुत नीचे आ जाता है और मरीज़ की हालत वहुत खतरनाक वन जाती है। खून का दवाव कम होने के केस प्रायः वहुत क़म होते हैं जवकि वढ़े हुए दवाव (रक्तचाप-वृद्धि) के केस ही आजकल अधिक देखने में आते हैं। वढ़ा हुआ रक्तचाप जितना खतरनाक हो सकता है उतना ही कम खतरे का भी है; क्योंकि वढ़े हुए रक्तचाप के रोगी दस-दस और वीस-वीस साल तक आराम से जीते देखे जाते हैं। दिल की क्रिया में खरावी आने पर; गुर्दों के क़ाम में खरावी पैदा हो जाने पर तथा 'एड्रनल' नामक ग्रन्थियों में विकार आने पर तथा रक्तवाहिनी नलिकाओं की लचक कम हो जाने पर खास तौर से रक्तचाप-वृद्धि की शिकायत पैदा हो जाती है। लेकिन और भी कई छोटे-मोटे कारण इसके लिए ज़िम्मेदार हैं: चिन्ता, शोक और दिमागी परेशानी की हालत में भी

यह शिकायत हो जाती है। प्राकृतिक चिकित्सा-विशारदों का कहना है कि आजकल बड़े शहरों की मशीन जैसी जिन्दगी, अनियमित खान-पान, चाय-सिगरेट और सफेद चीनी का ज्यादा इस्तेमाल ही इस रोग की जड़ है। वे रक्तचाप-वृद्धि को आधुनिक सभ्यता का अभिशाप मानते हैं। और इसमें शक नहीं कि हमारे जीवन में जितनी कृत्रिमता बढ़ती जा रही है, शरीर में उतने ही रोग उत्पन्न होते जा रहे हैं और ऐसे रोगों में रक्तचाप-वृद्धि प्रमुख है। जीवन को सादा बनाने से, खान-पान में प्राकृतिकता लाने से—दिनचर्या को नियमित और संयमित करने से इस रक्तचाप-वृद्धि की शिकायत को समूल नष्ट किया जा सकता है। हम यहां यह भी बता देना चाहते हैं कि आजकल बहुत-से व्यक्ति धन कमाने के लालच में दिन-रात ताबड़तोड़ शारीरिक और दिमागी मेहनत करते हैं। वे नींद और आराम की तरफ कोई ध्यान नहीं देते। ऐसे व्यक्ति अदबदाकर 'रक्तचाप-वृद्धि' के शिकार हो जाते हैं। यह ठीक है कि जिन्दगी में उन्नति के लिए संघर्ष और परिश्रम जरूरी है; लेकिन शारीरिक स्वास्थ्य के लिए नींद और आराम भी उतने ही जरूरी हैं।

आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान ने रक्तचाप-वृद्धि की काफी सफल ओषधियां खोज निकाली हैं। भारतीय ओषध 'सर्पगन्धा' इनमें प्रमुख है। लेकिन ओषध-सेवन के साथ-साथ प्रत्येक डाक्टर रोगी को नियमित और संयमित जीवन विताने की तथा दिमागी परेशानियों से अलग रहने की सलाह देता है। इस प्रकार ओषध-सेवन और परहेज से इस रोग पर पूरी तरह काबू पा लिया जाता है।

खून के बढ़े हुए दबाव के लक्षण होते हैं—सिर में चक्कर आना, सिरदर्द रहना, आंखों पर खिचाव मालूम देना, गुर्दों की खराबी के कारण रक्त का दूषित हो जाना। रोग की तीव्र दशा में तो व्यक्ति अन्धा भी हो सकता है। कई बार आंख में रक्तस्राव भी हो जाता है। पाठकों को शायद ताज्जुब होगा कि उपर्युक्त किसी लक्षण के न होते हुए भी कई व्यक्तियों का रक्तचाप ऊंचा पाया गया है। बढ़े हुए रक्तचाप की दशा में व्यक्ति के दिमाग की नस फटकर अथवा दिल फेल होकर उसकी मृत्यु हो सकती है। इसलिए इस रोग की तरफ से लापरवाही

तो करनी ही नहीं चाहिए। लेकिन विश्वास के साथ परहेज़ और औषधि-सेवन से रोग पर विजय पानी चाहिए। इस रोग में नमक का काफी परहेज़ किया जाता है। बहुत बार रोगी को नमक छोड़ ही देना होता है। दृढ़ आत्मविश्वासवाले व्यक्ति इस पर शीघ्र विजय पा लेते हैं।

जिगर और गुर्दे के दर्द (कालिक पेन)

पढ़े-लिखे व्यक्तियों के लिए 'कालिक पेन' शब्द अपरिचित नहीं है। 'कालिक पेन' का मतलब है रुक-रुककर ऐंठनी पैदा होकर तेज़ दर्द होना। इस किस्म का दर्द जिगर और गुर्दों में तब पैदा होता है जब उनमें पथरी पैदा हो जाती है। गुर्दों के दर्द को 'रीनल कालिक' और जिगर के दर्द को 'बिलियरी-कालिक' कहा जाता है। इन दोनों स्थानों के अलावा कभी-कभी उदर में भी ऐसा ही ऐंठनी मारनेवाला दर्द होता है और उसका जिगर या गुर्दों से कोई ताल्लुक नहीं होता। उदर के इस दर्द को केवल 'कालिक' या 'कालिक पेन' कह दिया जाता है।

'कालिक' निश्चित रूप से अजीर्ण (बदहज़मी) का लक्षण है। इस किस्म का बदहज़मी तभी पैदा होती है, जब हम कोई ऐसी उत्तेजक या भारी वस्तु खा लेते हैं जिसे हमारी आंतें ग्रहण नहीं करतीं। इसके ठीक वही कारण होते हैं जो पीछे बताए गए उत्तेजनात्मक अतिसार के होते हैं। आंतों की ऐंठनी उस भारी वस्तु को बाहर धकेलने के लिए होती है जिसका फल अतिसार होता है। सच तो यह है कि ऐसी दशा में अतिसार और दर्द साथ-साथ चलते हैं। अधिकांश रूप में 'कालिक' एकाएक पैदा होता है। प्रायः इसका हमला रात्रि के समय होता है। और इसके साथ जी मिचलाता है, कै भी होने लगती है, रोगी को मूर्च्छा भी आ जाया करती है। पेट को दाबने से रोगी को आराम मिलता है। वह प्रायः खाट पर इधर-उधर लोटता है। कभी उलटा लेटकर पेट पर दबाव डालता है। कभी सीधा लेटकर टांगें पेट पर सिकोड़ लेता है।

यह 'कालिक' हालांकि काफी तकलीफदेह होता है, लेकिन कोई जान-जोखों की बात नहीं होती। चूंकि इस 'कालिक' के लक्षण थोड़े-

बहुत और भी उदर-रोगों से मिलते-जुलते होते हैं, इसलिए घण्टे दो घण्टे में यदि दर्द शांत न हो जाए तो जरूर डाक्टर को बुलाना चाहिए। कब्ज़ से पेट में दर्द हो गया है, यह समझकर कोई चूरन या दस्त की दवा नहीं देनी चाहिए, क्योंकि अगर 'अपेण्डिसाइटिस' का दर्द हुआ तो दस्त की दवा बहुत नुकसान कर जाएगी। ऐसी हालत में सिर्फ रबड़ की बोतल में गर्म पानी भरकर पेट को सेंकना ही उपयुक्त होता है।

जिगर का कालिक—ज्यादातर बैठे रहना, आरामतलबी की आदत, गरिष्ठ भोजन करना और व्यायाम आदि न करना ही जिगर में पथरी पैदा हो जाने के कारण बन जाते हैं। जिगर में भीतर की ओर पित्त की थैली लगी होती है। यह पथरी उसीमें पैदा हो जाती है। इस रोग के रोगियों को प्रायः कब्ज़ और अजीर्ण की शिकायत रहती है। जिगर का कालिक पुरुषों की बनिस्बत स्त्रियों में अधिक देखने में आता है। और प्रौढ़ावस्था के लोग प्रायः इसके शिकार होते हैं।

वस्तुतः दर्द तब पैदा होता है जबकि पित्त की थैली में से पथरी उखड़कर पित्त की नली के ज़रिये आंतों में आना चाहती है। बहुत छोटी पथरी तो बिना कोई तकलीफ पैदा किए गुज़र जाती है अथवा मामूली-सा दर्द पैदा करती है। लेकिन जब पथरी बड़ी होती है तो दर्द बहुत तेज़ होता है। तब उदर में दाहिनी ओर पसलियों के लगाव में दर्द शुरू होता है, जोकि पीछे दाहिने कंधे तक पहुंचता है। ऐंठनी मारने के साथ-साथ कै भी हो जाती है जिसमें खाया-पिया निकल जाता है और फिर खट्टा पित्त आने लगता है। जब पथरी पित्त की नली पर अड़ जाती है तो रोगी को एकदम पीलिया हो जाता है। दर्द तभी बन्द होता है जबकि पथरी पित्त की नली में से गुज़र जाए या फिर वापस थैली में अपनी जगह पर बैठ जाए। पथरी न निकलने की हालत में अथवा एक से अधिक पथरियां होने की सूरत में दर्द एक बार ठीक होकर फिर हो सकता है, लेकिन उसका कोई अंतर निश्चित नहीं है। कई बार यह दर्द सालों नहीं उठता। ज्यादा बड़ी पथरी जिगर की सूजन अथवा फोड़ा भी उत्पन्न कर सकती है जिसके लिए फिर आपरेशन की ज़रूरत होती है। यदा-कदा पथरी नली में फंस जाने

पर भी आपरेशन कराना पड़ जाता है।

बहरहाल, 'जिगर के कालिक' के लिए डाक्टर के पथ-प्रदर्शन की भारी आवश्यकता होती है। प्रायः इसमें एक्सरे कराने की भी जरूरत आ पड़ती है। डाक्टर लोग रोगी को परेशानी से मुक्ति दिलाने के लिए मार्फिया (अफीम का जौहर) का इंजैक्शन लगाते हैं। 'उदर के कालिक' की तरह इसमें भी घरवालों को सिवाय जिगर के हिस्से को गर्म पानी की बोतल से सेंकने के और कोई उपचार या घरेलू दवा-गोली नहीं देनी चाहिए। दर्दनाशक एस्प्रिन-घटित ओषधियां सभी कालिकों में बेकार रहती हैं।

गुर्दे का कालिक—स्वभाव में गुर्दे का कालिक भी जिगर के कालिक के समान ही होता है, लेकिन स्थान-भेद और कुछ लक्षणों की कमी-वेशी से इनकी पहचान होती है। नीचे की सारिणी में दोनों का अंतर दिया जा रहा है।

गुर्दे का कालिक	जिगर का कालिक
१. बीच कमर से कुछ नीचे एक ओर दर्द।	१. उदर में सामने दाहिनी ओर दर्द।
२. दर्द नीचे जंघा और कूल्हों में फैलता है।	२. दर्द पीछे कमर में और दाहिने कन्धे की तरफ चलता है।
३. दर्द दाहिनी या बायीं एक ओर ही होता है, दोनों ओर विरले ही होता है।	३. दर्द सिर्फ दाहिनी तरफ ही रहता है।
४. अण्डकोष ऊपर की ओर खिच जाते हैं।	४. अप्रभावित रहते हैं।
५. बार-बार पेशाब की हाजत होती है।	५. नहीं होती।
६. पेशाब करने में तकलीफ हो सकती है।	६. नहीं होती।
७. पेशाब थोड़ा, गहरे रंग का और कभी-कभी खून मिला आता है।	७. अप्रभावित रहता है।

८. प्रायः रोगी को पहले गठिया या रियूमैटिज्म हो चुका होता है।	८. प्रायः रोगी को पीलिया, पथरी और बहुत पीली टट्टी आने की शिकायत हो चुकी होती है।
९. अधिकतर पुरुष इसके शिकार होते हैं।	९. अधिकतर स्त्रियां इसकी शिकार होती हैं।

वमन एक ऐसा लक्षण है जो तीनों प्रकार के कालिकों में पाया जाता है। लेकिन किसी-किसी गुर्दे के मरीज में नहीं भी होता। गुर्दे के कालिक में पथरी गुर्दे में बनती है और गुर्दे से मसाने में पेशाब डालनेवाली नली में अटकती है। यदि गुजर जाती है तो मसाने में आ पड़ती है। जिगर की पथरी मुख्यतया पित्त जमने से बन जाती है जबकि गुर्दे की पथरी पेशाब में निकलनेवाले लवणों से बनती है। चिकित्सा-क्रम भी प्रायः दोनों कालिकों में एक-सा रहता है। बड़ी पथरी होने की दशा में गुर्दे के कालिक में भी एक्सरे और आपरेशन की जरूरत आ पड़ती है। लेकिन फिर भी गुर्दे का कालिक जिगर के कालिक से हलका माना जाता है। गुर्दे के कालिक को बोल-चाल की भाषा में 'दर्द गुर्दा' कहा जाता है। इस दर्द की हालत में रोगी को काफी पानी पिलाना चाहिए और कमर के जिस हिस्से में दर्द उठता है वहां गर्म पानी की बोतल से सिकाई करनी चाहिए। डाक्टर का मशवरा बहुत जरूरी होता है।

एलर्जी

'एलर्जी'[1] अंग्रेजी का एक शब्द है जिसका भाव है—शरीर की कुछ बेचैन और परेशान करनेवाली शिकायतें—जैसे दमा, पित्त उछलना, चमला (उंकवत), खुजली, हे फीवर (एक प्रकार की घास से होनेवाला बुखार), तड़ातड़ छींकें आना, नाक बहना, कै हो जाना आदि।

एलर्जी एक प्रकार से कुछ बाहरी तत्त्वों के प्रति शरीर की नाराजी होती है। ठीक उसी तरह जैसे आप किसीके प्रति

१. हिन्दी में इसका अर्थद्योतक कोई एक शब्द नहीं है।

नाराज़ी ज़ाहिर करते हैं। मान लीजिए घर में कोई बात आपकी मर्जी के खिलाफ हो गई है तो आप उसके लिए घर में डांट-फटकार करते हैं; पत्नी से बोलना छोड़ देते हैं; खाना नहीं खाते—और इस तरह आप अपनी नाराज़गी ज़ाहिर करते हैं। लगभग इसी तरह आपका शरीर भी कुछ तत्त्वों और परिस्थितियों के सम्पर्क में आकर नाराज़ हो उठता है क्योंकि वे तत्त्व और परिस्थितियां उसे पसन्द नहीं होतीं। और ऐसे तत्त्व और परिस्थितियां एक नहीं अनेक हो सकती हैं और ये भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के लिए भिन्न-भिन्न होती हैं। सामान्यतया ये चीजें हैं—गन्ध, भोजन, ओषधियां, कीटाणु, धूल, गर्द, गर्मी, सर्दी आदि। इन तत्त्वों को 'एलर्जन' कहा जाता है, अर्थात् एलर्जी पैदा करनेवाले। एलर्जनों की सूची बड़ी लम्बी है और किस व्यक्ति के लिए क्या चीज़ एलर्जन है इसका पता लगाना बड़ी टेढ़ी खीर है। एक व्यक्ति को ततैये के काटने से पित्त उछल आता है लेकिन बहुतों को कुछ नहीं होता। दूसरे की ठण्डी हवा में नाक बहने लगती है। कइयों को बर्फ पीते ही दमे का दौरा पड़ जाता है। बहुतेरों को गर्द, धूल या तेज़ खुशबू से नज़ला हो जाता है। अनेकों को पैन्सिलीन का इंजैक्शन लगवाने से शरीर में खुजली मचने लगती है और बदन लाल हो जाता है। जब यह पता चल जाए कि अमुक व्यक्ति के लिए अमुक चीज़ एलर्जन है तो उससे उसे हमेशा बचना चाहिए।

अब बहुत-सी एलर्जियों की ओषधियां निकल आई हैं और ये ओषधियां काफी लाभदायक भी हैं। लेकिन कई स्थानों पर फेल भी हो जाती हैं। यों तो हरएक एलर्जी कमो-बेश दर्जे में शरीर में बेचैनी और परेशानी पैदा करती है, लेकिन दमा सबसे ज्यादा खौफनाक एलर्जी है। इससे यदा-कदा रोगी मर भी जाता है। दमे की हालत में सांस लेनेवाली नलिकाओं में ऐंठनी होने लगती है जिससे वे छोटी पड़ जाती हैं। साथ ही वहां बलगम ज्यादा बनने लगता है और साफ हवा आने को जगह ही नहीं रह जाती; फलतः रोगी का दम फूलने लगता है। वह बड़ी मुश्किल से रुक-रुककर सांस ले पाता है। लेटने से दम और ज्यादा उखड़ता है और दमे का रोगी बैठे-बैठे ही रात गुज़ार देता है। सांस की नलिकाओं में ऐंठनी होने के कारण उसे छाती पर

जकड़ाहट महसूस होती है। दमे का दौरा कुछ मिनटों में भी समाप्त हो जाता है और कई-कई घण्टे तथा कई-कई दिन तक भी चलता रहता है। दमे के दौरे को ठीक करने की कई सफल ओषधियां हैं जिनमें 'एड्रनलीन' का इंजेक्शन काफी महत्त्व का है। लेकिन एक बार शरीर में घर कर लेने के बाद दमा शरीर से बाहर नहीं निकलता। इसीलिए कहावत मशहूर है कि 'दमा दम के साथ ही जाता है।' इसको जड़ से खोनेवाली औषध अभी तक कोई नहीं निकली है।

इसी तरह चमला भी बड़ी ढीठ एलर्जी है। हालांकि यह दमे के बराबर तो तकलीफ नहीं देता लेकिन इसका अच्छा होना बड़ा मुश्किल होता है। यूं कई बार यह स्वयं भी ठीक हो जाता है। कोई एक ओषध यदि किसी व्यक्ति के चमले को ठीक कर देती है तो यह जरूरी नहीं है कि वह दूसरों पर भी वैसा ही असर करेगी।

बहरहाल, एलर्जी के बारे में इतना ही कहा जा सकता है कि इसके कारण एलर्जनों को मालूम करने की कोशिश करनी चाहिए और उनसे बचना चाहिए।

कब्ज़

कब्ज़ का अनेक वैज्ञानिक आज के युग का अभिशाप मानते हैं। वस्तुतः संसार में आज जितने कब्ज़ के मरीज़ हैं उतने किसी दूसरे रोग के नहीं हैं। यूं कब्ज़ की गिनती रोगों में नहीं की जाती, यह एक मामूली-सी शिकायत होती है; लेकिन यह बाज़ औक़ात बड़ा नुकसान-देह साबित होता है। समझ लीजिए कि अगर आपके मुहल्ले में कोई 'अड्डा' कायम हो जाता है तो वहां जुआरी, चोर, शराबी, व्यभिचारी, हत्यारे और डाकू आदि सभी तरह के बदमाशों की आमद-रफ्त हो जाती है। कब्ज़ भी शरीर में एक बुरे अड्डे के समान होता है जो अनेक रोगों को आकर्षित करता और पनाह देता है। पाचन-सम्बन्धी रोग तो ज्यादातर कब्ज़ से ही पैदा होते हैं।

कब्ज़ की हालत में शौच साफ नहीं होता। मल सूखा और कम तादाद में निकलता है। यह होता है बड़ी आंतों की सुस्त क्रिया के कारण। इन आंतों में मल को बाहर की ओर ठेलने के लिए जो

एक स्वाभाविक हरकत हुआ करती है वह मन्द पड़ जाती है। फलतः मल अधिक देर तक आंतों में पड़ा रहता है और उसका जलीय अंश आंतें सोख लेती हैं, जिससे वह खुश्क पड़ जाता है।

कब्ज़ हमेशा ही खान-पान की असावधानी और अनियमित दिन-चर्या के फलस्वरूप पैदा होता है। कई बार यह शोक, चिन्ता आदि मानसिक परिस्थितियों से भी पैदा होता है और अनेक लोगों में बैठे रहने की आदत से भी कब्ज़ पैदा हो जाता है। कब्ज़ की हालत में पेट भारी रहता है, भूख नहीं लगती या कम लगती है; बहुत-से लोगों के मुंह का ज़ायका खराब हो जाता है। इतना ही नहीं कई बार मुंह से दुर्गन्ध आने लगती है। कब्ज़ से सिर में दर्द और भारीपन बना रहता है और कई लोगों को कमर के दर्द की शिकायत भी हो जाती है।

बहुत-से लोग पूछते रहते हैं कि स्वाभाविक रूप से दिन में कितनी बार शौच होना चाहिए? इसके बारे में कोई एक नियम हर व्यक्ति पर लागू नहीं हो सकता। कुछ लोग दिन में एक बार और कुछ स्वाभाविक रूप से ही दिन में दो बार शौच जाते हैं। लेकिन कुछ लोगों को दूसरे या तीसरे दिन शौच होता है और यह आदत उनके लिए स्वाभाविक होती है। स्वाभाविक रूप से शौच बंधा हुआ हलके पीले रंग का होना चाहिए। खुलकर शौच होने के बाद तबियत हलकी महसूस होती है। पतला शौच होना अजीर्ण का लक्षण होता है।

जहां तक कब्ज़ के इलाज का प्रश्न है—इसका इलाज ओषधियां नहीं हैं। लेकिन अज्ञानवश लोग कब्ज़-कुशा दवाओं की तरफ ज़्यादा दौड़ते हैं। आजकल इन कब्ज़नाशक ओषधियों की बिक्री ही सबसे ज़्यादा होती है। किन्तु आज तक किसी व्यक्ति का कब्ज़ ओषधियों से ठीक नहीं हुआ है। बल्कि ये दस्तावर ओषधियां उलटे पाचन-क्रिया को बिगाड़ देती हैं। कब्ज़ का इलाज है नियमित जीवन, नियमित खान-पान और हलका व्यायाम। नीचे कब्ज़ दूर करने के कुछ आधार-भूत नियम दिए जाते हैं :

- प्रातःकाल शौच से पहले ही एक गिलास ताज़ा पानी पीना चाहिए। हो सके तो पानी में एक नीबू और ज़रा-सा नमक डाल लें।
- पानी पीकर थोड़ी दूर टहलने के बाद शौच जाना चाहिए।

○ नियमित समय पर शौच के लिए अवश्य बैठें चाहे हाजत हो या न हो। इससे कुछ दिन बाद समय पर शौच आने का अभ्यास हो जाएगा।

○ भोजन के साथ हरी सब्ज़ियां और फल खाने चाहिए। भोजन के साथ पानी कम पिएं लेकिन दो घण्टे पश्चात् ज़्यादा पानी पिएं। दिन में पानी जितना ज़्यादा पिया जा सके पीना चाहिए। समर्थ व्यक्ति पानी की जगह फलों का रस भी पी सकते हैं।

○ दूध और दही का इस्तेमाल भी कब्ज़ दूर करने में सहायक होता है।

○ अपनी रुचि और समय के मुताबिक कोई हलका व्यायाम[1] नियमित रूप से करना चाहिए।

हिस्टीरिया

हिस्टीरिया तो आजकल एक सामान्य रोग हो गया है। विशेष रूप से युवती स्त्रियों को इसके दौरे बहुत पड़ते हैं। वैसे हिस्टीरिया पुरुषों को भी होता है लेकिन बहुत कम। मिरगी भी हिस्टीरिया से मिलता-जुलता रोग है, लेकिन दोनों के दौरों के लक्षणों में काफी अन्तर होता है।

हिस्टीरिया का दौरा पड़ने से पहले रोगिणी को दौरा पड़ने का आभास हो जाता है इसलिए वह किसी सुरक्षित स्थान पर बैठ या लेट जाती है। बहुत-सी रोगिणियों को पेट से एक गोला-सा उठता हुआ अनुभव होता है जोकि उनके गले में आकर अटकता मालूम पड़ता है और रोगिणी बेहोश हो जाती है। जबड़ा सख्ती से बन्द हो जाता है, मुट्ठियां भिच जाती हैं और हाथ-पैर ऐंठते हैं। कभी-कभी सारी देह में ऐंठनी होती है और रोगिणी ऐंठनी में करवट लेकर खाट से नीचे गिर जाती है। दो-चार सेकण्ड के लिए सांस ज़ोर से चलने लगती है। कई बार रोगिणी दौरे में ज़ोर-ज़ोर से रोती है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक स्नायविक लक्षण हो सकते

१. व्यायामों की विशेष जानकारी के लिए पढ़िए—लेखक द्वारा लिखित 'योगासन और स्वास्थ्य'।

हैं। ये दौरे कुछ मिनटों में भी खुल जाते हैं और कई-कई घण्टों तक भी कायम रहते हैं। यहां तक कि चौबीस से लेकर अड़तालीस घण्टों तक के दौरे देखे गए हैं। इसके अलावा दौरे दिन में कई-कई बार भी पड़ जाते हैं और महीनों तक भी नहीं पड़ते।

हिस्टीरिया शुद्ध रूप से एक मानसिक रोग माना गया है। जो व्यक्ति खास तौर पर उपेक्षित रहते हैं, जिन्हें सहानुभूति और प्रेम नहीं मिलता उनके मन की प्रतिक्रिया-स्वरूप हिस्टीरिया के दौरे उत्पन्न हो जाते हैं। महिलाएं चूंकि अधिक भावुक और कोमल मन की होती हैं, उनपर इसका जल्दी प्रभाव पड़ता है। प्रायः पति का प्रेम न मिलना, पति की किसी दूसरी स्त्री में आसक्ति, सन्तान न होना, घरवालों का दुर्व्यवहार, अल्पायु में वैधव्य, मन की अनेक अपूर्ण इच्छाएं और इसी तरह के दूसरे कारण महिलाओं में हिस्टीरिया के लिए उत्तरदायी हैं।

हिस्टीरिया की अनेक रोगिणियां अनेक रोगों के काल्पनिक लक्षणों से अपने को घिरा पाती हैं, जबकि वास्तव में उनको कोई रोग नहीं होता। कभी वे अपने पेट और छाती में दर्द महसूस करती हैं; कभी उन्हें तेज़ बुखार का आभास होता है। कभी वे समझती हैं कि उनके हाथ-पैर मारे गए हैं; कभी उन्हें अपना दिल डूबता-सा लगता है। और यह सब सहानुभूति पाने के लिए उनके अन्तर्मन की चेष्टा होती है। कई बार तो रोगिणियां स्वयं अपने को चोट मारकर, पिन चुभोकर दूसरों की सहानुभूति अपनी ओर आकर्षित करना चाहती हैं।

औषध-चिकित्सा हिस्टीरिया में कोई खास कामयाबी नहीं दिखाती। दरअसल रोगिणी के साथ अच्छा व्यवहार, प्रेम और सहानुभूति बरतने से इस रोग पर बहुत काबू पा लिया जाता है। लेकिन रोगिणी के साथ बहुत सहानुभूति भी नहीं दिखानी चाहिए; क्योंकि अनेक बार वह और अधिक सहानुभूति के लिए कुचेष्टाएं भी करने लगती है। इसके अतिरिक्त रोगिणी को समझा-बुझाकर आश्वस्त करना चाहिए। स्वयं रोगिणी को भी अपने भावावेशों पर संयम रखना चाहिए। यदि रोग कुछ अधिक बढ़ गया हो तो मानसोपचारक द्वारा इलाज कराना चाहिए।

दौरे की हालत में रोगिणी के कपड़े ढीले कर देने चाहिए। उसे खूब हवादार स्थान में रखें अथवा पंखे से हवा करें। एमोनिया सुंघाएं अथवा चूना और नौसादर मिलाकर सुंघाएं। यदि ये वस्तुएं पास न हों तो मुंह पर ठण्डे पानी के छपके मारें। नाक में कागज़ की बत्ती डालें ताकि छींक आकर दौरा खुल जाए।

इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य के नियमों का पालन करना चाहिए—जैसे घूमना या हलका व्यायाम। और पौष्टिक भोजन—विशेष रूप से हरी सब्ज़ियां, ताज़े फल, दूध-दही आदि—का सेवन करना चाहिए।

अजीर्ण

अजीर्ण का अर्थ है बदहज़मी। अजीर्ण या बदहज़मी ये दोनों ही ऐसी ढिलाई से प्रयोग किए जानेवाले शब्द हैं कि इनके अन्तर्गत बहुत सारे लक्षण आ सकते हैं। स्वाभाविक पाचन-क्रिया में गड़बड़ होने पर जितने हालात बन सकते हैं वे सभी बदहज़मी कहलाते हैं। साधारण पेट के दर्द से लेकर पेट के जलन तक अजीर्ण की परिभाषा में आ जाते हैं। बदहज़मी की शिकायतें खान-पान की गड़बड़ी से भी हो जाती हैं और कीटाणुओं के आक्रमण से भी। एक ओर जहां ये शिकायतें बहुत मामूली दर्जे की होती हैं, दूसरी ओर ये बड़ी विकराल भी बन जाती हैं।

पेट का भारीपन एक साधारण शिकायत है जो अधिक भोजन खा लेने से हो जाती है। कुछ देर आराम कर लेने से यह खुद ही ठीक हो जाती है। लेकिन इसके माने यह नहीं है कि भोजन भूख से ज्यादा खा लिया जाए। बदहज़मी के सिलसिले में दूसरी आम शिकायत है छाती पर जलन पैदा हो जाने की, जोकि आंतों में अम्ल (खटाई) अधिक बढ़ जाने से हो जाती है, और जिसे आम तौर पर लोग सोडा या कोई चूरन खाकर ठीक कर लेते हैं। अम्ल हमेशा गलत खान-पान से बढ़ता है। मुंह आ जाना या मुंह में छाले हो जाना अम्ल बढ़ जाने का एक प्रमुख लक्षण होता है। शराब, चाय, काफी, गोश्त, सफेद दानेदार चीनी, बारीक छनी हुई मैदा के परांठे, पूरी, रोटी आदि खाद्य विशेष रूप से इस बढ़े हुए अम्ल के लिए ज़िम्मेदार होते हैं।

दरअसल इस अम्लत्व का इलाज ओषधियों का सेवन करना नहीं, अपितु अम्लत्ववर्धक खाद्य-पदार्थों को छोड़ देना है।

वढ़ा हुआ अम्ल सिर्फ छाती की जलन या मुंह के छालों तक ही सीमित नहीं रहता ; अपितु यह वहुत दूर तक मार करता है। कब्ज़ तो आम तौर पर इससे हो ही जाता है। इसके अतिरिक्त यह पेट में ज़ख्म तक पैदा कर देता है। पेट का ज़ख्म कोई मामूली वीमारी नहीं होती वल्कि दवाओं से जब इसका इलाज नहीं हो पाता तो पेट का आपरेशन भी कराना पड़ जाता है। पेट के ज़ख्म की हालत में रोगी वहुत कमज़ोर हो जाता है। वह जो कुछ खाता है वह जब पेट के ज़ख्म में जाकर चुभता है तो रोगी को दर्द होता है और खाना वमन होकर निकल जाता है। वाज़ औकात तो पानी हज़म होना भी मुश्किल हो जाता है ; और हर समय पेट में दर्द और चुभन वनी रहती है। ये ज़ख्म छोटे-वड़े भी होते हैं और एक से अधिक संख्या में भी हो सकते हैं। वहरहाल, इनका इलाज वड़ी सावधानी से योग्य डाक्टर द्वारा ही कराना चाहिए।

दूसरा एक वड़ा ढीठ और परेशान करनेवाला मर्ज़ है—पेट में गैसें पैदा होना, जो इस वढ़े हुए अम्ल की कृपा से हो जाता है। और यह मर्ज़ आज आम तौर पर लोगों में फैला हुआ है। मामूली-सा अफारा भी पेट में गैस की गड़वड़ी से ही हो जाता है जो थोड़ी देर वाद एक-दो वार हवा खारिज (वायुसरण) होने से ठीक हो जाता है। लेकिन हमारा तात्पर्य यहां गैसों के उस रूप से है जिसमें आदमी पागल कुत्ते की तरह परेशान रहता है। आंतों से गैसें वनकर जव ऊपर को चलती हैं तो कहीं रोगी को चक्कर आते हैं, सिर जकड़ जाता है, दिल की धड़कन वढ़ी हुई महसूस होती है, घवराहट के कारण पसीना आ जाता है। दिल डूबता हुआ-सा लगता है ; किसी-किसीको मूर्च्छा भी आ जाती है। किसी भी अंग में पीड़ा महसूस होने लगती है। इसके अतिरिक्त और भी वहुत-से सम्भव-असम्भव लक्षण पैदा हो जाते हैं। हालांकि ये सव लक्षण मिथ्या होते हैं और रोगी के लिए घातक नहीं होते, लेकिन वेहद परेशान करनेवाले होते हैं।

जहां तक गैसों के इलाज का सम्वन्ध है, इसमें ओषधियां कम

ही कामयाब सिद्ध होती हैं। इसलिए ज्यादा ज़ोर रोगी के खान-पान पर दिया जाता है। आज के युग के तथाकथित सभ्य लोगों के खाद्य-पदार्थ इन गैसों के लिए उत्तरदायी हैं और इनके खिलाफ आज विदेशों के आहार-विशेषज्ञ बड़ा भारी आन्दोलन चला रहे हैं। जो देश जितना अधिक सभ्य है गैसों के रोग वहां उतने ही अधिक हैं। यूरोप और अमेरिका के स्वास्थ्यप्रिय लोग अब सफेद चीनी और बारीक मैदा छोड़ते जा रहे हैं। चीनी से एक-एक बूंद शीरा निचोड़-कर उसे सफेद और दानेदार बना दिया जाता है, जबकि उस शीरे में ही विटामिन और दूसरे पोषक तत्त्व होते हैं। आटे को छानकर जो चोकर हम फेंक देते हैं उससे हम गेहूं के प्रोटीन, विटामिन और दूसरे पोषक तत्त्वों से महरूम रह जाते हैं। इस दृष्टि से 'ब्राउन शुगर' (गुड़, बूरा, राब) और बिना छना आटा पूर्ण रूप से आरोग्यदायक और स्वास्थ्यवर्धक होते हैं। चाय और काफी में एक ऐसा ज़हरीला पदार्थ रहता है जो पेट में पहुंचकर अम्लता को उत्तेजित करता है।

ताजे फल और हरी सब्जियां अम्लता की दशा में बहुत लाभ-दायक सिद्ध होती हैं; क्योंकि इन दोनों में क्षारीय तत्त्व होते हैं जो अम्लता को नष्ट करते हैं। रसवाले फल विशेष रूप से लाभदायक होते हैं। अम्लता के रोगी को पानी काफी तादाद में पीना चाहिए। इससे अम्लता हलकी पड़ जाती है। तेज़ मिर्च-मसाले और गोश्त तो अम्लता के रोगी को बिलकुल ही छोड़ देने चाहिए। हालांकि गैसों की यह शिकायत देर से ही जाती है लेकिन खान-पान की एहतियात से इसपर अवश्य काबू पा लिया जाता है।

पेट का दर्द भी अजीर्ण के दायरे में आता है। लेकिन कई मर्तबा पेट का यह दर्द, एपेण्डिसाइटिस, पेट के ज़ख्म तथा जिगर की पथरी का भी लक्षण होता है। इन दशाओं में कब्ज़ का दर्द समझकर दस्ता-वर दवा ले लेना घातक सिद्ध हो जाता है। साधारण अजीर्ण से उत्पन्न हुआ पेट का दर्द मामूली उपचार से घण्टे आध-घण्टे में ठीक हो जाता है। लेकिन जब एक घण्टे के बाद भी पेट के दर्द में कोई कमी न आए तो फौरन डाक्टर को दिखाना चाहिए; क्योंकि वह अगर कहे किसी गम्भीर रोग का लक्षण हो सकता है।

एनीमिया

एनीमिया का अर्थ है रक्ताल्पता—अर्थात् शरीर में खून की कमी। एनीमिया कई रोगों के लक्षणस्वरूप भी पैदा होता है और यह खुद भी एक मर्ज़ है जोकि शरीर में लौहतत्त्व की कमी से पैदा होता है। मलेरिया, न्यूमोनिया, कालाज़ार, मियादी बुखार, टी० बी०, मधुमेह आदि जीर्ण रोगों के फलस्वरूप भी एनीमिया की दशा पैदा हो जाती है। किसी दुर्घटना में अथवा आपरेशन के फलस्वरूप शरीर से ज़्यादा खून निकल जाने पर भी एनीमिया होता है।

लौहतत्त्व की कमी से होनेवाला एनीमिया आजकल काफी व्यापक रोग हो चला है और पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां इस मर्ज़ की ज़्यादा शिकार पाई जाती हैं। यहां तक कि लगभग पचहत्तर फीसदी महिलाएं आज एनीमिया के चंगुल में फंसी हैं। शरीर में खून बनाने का काम हमारा जिगर करता है। लौहतत्त्व की कमी से जिगर की क्रिया मन्द पड़ जाती है। फलतः शरीर में खून कम हो जाता है। एनीमिया की हालत में शरीर की त्वचा कुछ रूखी और हलका पीलापन लिए हुए सफेद-सी दिखाई देने लगती है। सिर में चक्कर और हलका-हलका दर्द रहता है। पिण्डलियां कटती हैं। शरीर में कमज़ोरी महसूस होती है, भूख कम हो जाती है; प्रायः कब्ज़ हो जाता है और महिलाओं में प्रदर की शिकायत पैदा हो जाती है।

इस रोग का मुख्य इलाज है शरीर में लोहा पहुंचाना। लौह-घटित ओषधियां और इन्जेक्शन इस रोग में काफी लाभ करते हैं। लेकिन बुनियादी तौर पर हमारे खाद्य-पदार्थ ऐसे होने चाहिए जिनमें शरीर को लौह ज़रूरत के मुताबिक तादाद में मिलता रहे। सब्ज़ियों में गाजर, पालक, मेथी, तथा चुकन्दर में काफी लौहतत्त्व होता है। चीकू, अनार, केला, आम, अमरूद, पपीता आदि फल लाभकारी हैं। दूसरे खाद्यों में गुड़, बूरा (सफेद चीनी नहीं), गन्ना, चोकर-समेत (बिना छना) आटा, बिना पालिश के चावल आदि लाभकारी हैं। मांस-भोजन में जिगर के शोरबे में बहुत लौहतत्त्व होता है।

पीलिया या कामला

विशेष रूप से जिगर की खराबी से होनेवाला यह दूसरा रोग है जिसमें शरीर की जिल्द का रंग पीला पड़ जाता है। आंखों का सफेद भाग भी पीला या हरा हो जाता है। टट्टी मटियाले रंग की आती है और पेशाब बहुत गहरा पीला हो जाता है। जिगर में लगी पित्त की नली में जब पथरी अटक जाती है अथवा किसी रोग के कारण नली का रास्ता छोटा पड़ जाता है तो पित्त आंतों में न पहुंचकर सीधा खून में मिलने लगता है। इस पित्त के कारण ही खून का पीलापन शरीर में झलकता है।

पथरी के अलावा किसी रोग के कारण अथवा अन्य किसी कारण से होनेवाला पीलिया कोई घातक या भयंकर रोग नहीं है। बहुधा जिगर में इस तरह के विकार खान-पान के दोष से भी आ जाते हैं। पित्त चूंकि अम्ल (खट्टा) होता है अतः पीलिया की चिकित्सा में क्षारीय लवण प्रयोग किए जाते हैं जो पित्त की अधिकता को कम कर देते हैं। कई बार तो खान-पान में परिवर्तन से ही रोग ठीक हो जाता है।

दूध, दही, छाछ, मूली, शलजम, गाजर तथा दूसरी हरी सब्ज़ियां, गन्ना और रसवाले फल इसमें लाभकारी होते हैं। दाल, गुड़, बूरा, चीनी, आलू, अरवी, घी तथा मक्खन जैसे गरिष्ठ भोजन वर्जित हैं।

हिचकी

अक्सर दो-चार या दस-बीस हिचकियां आकर स्वयं ही ठीक हो जाती हैं। ऐसी हिचकियों को कोई रोग या किसी रोग का लक्षण नहीं माना जा सकता। लेकिन जब ये हिचकियां लगातार चलती ही रहें तो इनके इलाज की ज़रूरत पड़ती है।

बहुधा हिचकियां अजीर्ण के कारण आती हैं अथवा जबकि भोजन को बहुत जल्दी-जल्दी सटक लिया जाता है। लेकिन कभी-कभी ये जिगर के विकार से तथा उदर की कुछ दूसरी शिकायतों के कारण भी पैदा हो जाती हैं। यदा-कदा, इन्फ्लुएन्ज़ा, फेफड़ों के रोग तथा

मस्तिष्क-विकार के कारण भी ये पैदा हो जाती हैं। डाक्टर के पास जाने से पहले निम्नलिखित उपचार करके देख लेने चाहिए :

१. अपने श्वास को जितनी देर भीतर रोका जाए रोकना चाहिए।

२. एक-एक घूंट करके एक गिलास ठण्डा पानी पिओ।

३. छोटा-सा बरफ का टुकड़ा मुंह में रखकर धीरे-धीरे उसे सटक जाओ।

४. बारी-बारी से ठण्डे और गरम पानी के गरारे करो—अर्थात् पहले ठण्डा पानी मुंह में रखो तो दूसरी बार गर्म पानी। प्रत्येक किस्म का पानी लगभग एक मिनट मुंह में रखना चाहिए।

५. हाथ से पकड़कर जीभ को बाहर खींचना चाहिए।

६. कागज़ या साफ कपड़े की बत्ती नाक में चढ़ाकर एक-दो बार छींकें लेनी चाहिए।

७. सादे गर्म पानी का एनीमा लगाओ।

८. एक चुटकी खाने का सोडा ठण्डे पानी के साथ फांक लो। यूं हिचकी कोई घातक लक्षण नहीं है। कई बार हिस्टीरिया के रोगी को भी हिचकियां आने लगती हैं और जब तक मरीज़ दौरे की हालत में रहता है हिचकियां चलती रहती हैं। बाद को खुद ही बन्द हो जाती हैं।

खांसी

खांसी एक सामान्य रूप से हो जानेवाली शिकायत है, जोकि हमेशा ही गले और फेफड़े के विकारों से पैदा होती है। खांसी पैदा होने का मतलब है कि गले अथवा श्वास-नलिकाओं में उत्तेजना पैदा हो गई है। चाहे यह उत्तेजना कीटाणुओं के कारण हो या धुएं, गर्द और धूल की वजह से हो अथवा फेफड़ों में बलगम पैदा हो जाने से हुई हो। जो लोग लगातार धुएं या गर्द-भरे वातावरण में रहते हैं उन्हें खांसी पुरानी पड़ जाती है। खांसी की आवाज़, ठुनके और उसके उठने के अन्दाज़ से बहुत कुछ इस बात का पता चल ज़ाता है कि खांसी किस किस्म और दर्जे की है और इसका क्या इलाज होना चाहिए। मोटे रूप से खांसी तीन तरह की होती है :

(१) सूखी खांसी—जिसमें बलगम न आता हो अथवा बहुत खांसने पर ज़रा-सा बलगम आता हो। ऐसी हालत में रोगी अपनी छाती में जकड़ाहट महसूस करता है। ऐसी खांसी प्रायः तपेदिक (टी० बी०), ब्रांकाइटिस, दमा, न्यूमोनिया या प्लूरसी की शुरुआत में होती है। कभी-कभी गले में सर्दी बैठ जाने पर भी सूखी खांसी उठने लगती है। एक माशा अदरक का अर्क और तीन माशे शहद मिलाकर चाटने से सूखी खांसी तर हो जाती है। इसे दिन में दो-तीन बार चाटना चाहिए। यदि साथ में बुखार न हो तो रबड़ी चाटने से भी लाभ होता है।

(२) तर खांसी—इसमें बलगम निकलने में कोई दिक्कत नहीं आती, बल्कि बलगम ज्यादा तादाद में निकलता है। ज्यादा बलगम निकलना कोई अच्छा लक्षण नहीं होता, क्योंकि यह बढ़ी हुई ब्रांकाइटिस, और तपेदिक की निशानी होती है।

(३) दौरे के रूप में उठनेवाली खांसी—ऐसी खांसी कई-कई घण्टे तक शांत रहती है। लेकिन जब उठ खड़ी होती है तो उठती ही चली जाती है। रोगी खांसते-खांसते परेशान हो जाता है। उसका मुंह लाल हो जाता है। ऐसा प्रायः काली खांसी (हूपिंग कफ) में होता है। कभी-कभी दमे में और बढ़ी हुई तपेदिक की हालत में भी खांसी के ऐसे दौरे आते हैं। यह इस वजह से कि फेफड़ों में बलगम ज्यादा इकट्ठा हो जाता है और उतना निकल नहीं पाता।

इसके अतिरिक्त और भी अनेक कारणों से खांसी हो जाती है। बहरहाल जब खांसी दो-चार दिन से ज्यादा रुके तो फौरन डाक्टर के पास जाना चाहिए; क्योंकि खांसी तपेदिक और दमा जैसे रोगों का पूर्वरूप होती है। बाज़ार में बिकनेवाली खांसी की दवाइयां खरीदकर खाने का सिद्धांत गलत है। क्योंकि सबसे पहले यह पता चलना चाहिए कि खांसी किस कारण से है। कारण अलग-अलग होने पर दवाएं भी अलग-अलग होती हैं।

कमर का दर्द (लम्बेगो)

'लम्बेगो' उस दर्द को कहते हैं जो कमर में, कूल्हे की हड्डियों से

ऊपर की ओर होता है। दर्द हलका और तेज़ दोनों दर्जे का हो सकता है। तेज हालत में तो रोगी को चलना-फिरना तक दूभर हो जाता है। लम्बैगो उस स्थान की पेशियों और स्नायुओं के प्रदाह के कारण होता है। इसके उत्पन्न होने के कारण एक नहीं अनेक होते हैं। यह पुराने रियूमैटिज़म से भी पैदा होता है, ठण्ड बैठ जाने से भी हो जाता है, ज़्यादा शारीरिक मेहनत से भी हो सकता है। लेकिन बहुत बार इसका कारण शरीर के किसी भाग में ज़हरीले माद्दे का केन्द्र होता है—जैसे किसी दांत की जड़ में मवाद पड़ जाना, टान्सिल पकना, कहीं नाक का पुराना ज़ख्म, मसाने अथवा आंतों के किसी भाग का प्रदाह या गुर्दे का प्रदाह।

लम्बैगो के इलाज के लिए सबसे पहले उसके कारण को तलाश करना पड़ता है। अतः होशियार डाक्टर का मशवरा लेना चाहिए। कई बार इसके लिए दांतों के एक्सरे तथा पेशाब-पाखाने की जांच की भी ज़रूरत पड़ जाती है। तेज़ दर्द की हालत में रबड़ की बोतल में गर्म पानी भरकर सिकाई करने से बहुत लाभ होता है।

बहुत बार कमर का दर्द हलके रूप में बराबर बना ही रहता है और उसका कारण भी प्रायः समझना कठिन हो जाता है। ऐसी सूरत में दर्द प्रायः कब्ज़ अथवा दूसरे पाचन-विकारों के कारण हो सकता है। कमर की पेशियों के कड़ेपन के कारण भी बहुत बार दर्द स्थायी हो जाता है। ऐसी दशा में हलका व्यायाम, विशेष रूप से योगासन[1], करने और स्वास्थ्य-नियमों के पालन से बहुत लाभ होता है।

गृध्रसी वायु (शाइटिका)

नितम्बों से निकलकर टखने तक जानेवाला स्नायु 'शाइटिक-स्नायु' कहलाता है (जो शरीर में सबसे लम्बा स्नायु है)। इस स्नायु का दर्द 'शाइटिका' या गृध्रसी वायु कहलाता है। इस दर्द की हालत में नितम्बों से लेकर घुटने के पिछले हिस्से तक और कभी एड़ी तक दर्द की एक लकीर-सी खिंची हुई मालूम पड़ती है। दर्द तेज़ भी होता

१. योगासनों की जानकारी के लिए पढ़िए—लेखक द्वारा लिखित 'योगासन और स्वास्थ्य'; प्रकाशक—हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा० लि०, शाहदरा, दिल्ली

है और हलके दर्जे का भी। तेज दर्द की हालत में तो रोगी को खाट की शरण लेनी पड़ती है। यह दर्द किसी भी एक ओर हो सकता है। सर्दी लग जाने से, गीले स्थानों में बैठने से, कब्ज तथा दूसरे अजीर्ण-विकारों से 'शाइटिका' उत्पन्न होता है। कभी-कभी रसौली पैदा हो जाने के कारण भी 'शाइटिका' होता है; चूंकि रसौली का दबाव 'शाइटिक स्नायु' पर पड़ता रहता है।

सिकाई और वायुनाशक तेलों की मालिश लाभ देती है। तेज़ दर्द की हालत में डाक्टर का मशवरा लेना चाहिए। हलके दर्जे का दर्द जिसमें रोगी चल-फिर सके स्वास्थ्य-नियमों के पालन और योगासन करने से दूर हो जाता है।

पायरिया

मसूढ़ों में मवाद पड़ जाने की हालत को 'पायरिया' कहा जाता है। यह मुख्य रूप से दांतों की सफाई की उपेक्षा करने से होता है। भोजन करने के बाद दांतों की दरारों में से नीम की सींक या चांदी की सलाई द्वारा वहां अटके हुए भोजनांश को साफ कर देना चाहिए। वस्तुतः यह भोजनांश ही दांतों की जड़ों की झिल्ली में प्रदाह पैदा करता है और बाद में वहां मवाद बनने लगता है। पायरिया धीरे-धीरे अपनी जड़ जमाता है। मसूढ़ों में चीस होना और उनसे खून निकलना इस बात का सबूत होता है कि पायरिया पैदा होने लगा है। मवाद आने की हालत तो अंतिम हालत होती है।

पायरिया की गिनती ढीठ मर्ज़ों में की जाती है। एक बार शुरू हो जाने के बाद इससे पीछा छुड़ाना कठिन होता है। इसका असर दांतों तक ही सीमित नहीं रहता बल्कि दांतों का मवाद भोजन के साथ पेट में पहुंचकर हाज़मा खराब कर देता है। इससे शरीर में कई प्रकार के दर्द रहने लगते हैं तथा और भी कई तरह के विकार पैदा हो जाते हैं। दांतों की सफाई और एहतियात ही इसका सबसे अच्छा इलाज है।

आजकल प्रायः लोग ब्रुश और पेस्ट ज़्यादा इस्तेमाल करते हैं। लेकिन ब्रुश से दांत साफ करने पर जो दांतों की गन्दगी ब्रुश में

लग जाती है उसका ध्यान आम तौर पर नहीं रखा जाता। नतीजा यह होता है कि वही गन्दगी फिर दांतों में पहुंच जाती है। सच तो यह है कि दांत साफ करने के बाद या तो ब्रुश को उबालना चाहिए अथवा डैटोल या लायसोल के कीटाणुनाशक घोल में डालकर रखना चाहिए। इस दृष्टि से हमारी भारतीय दातौन उत्तम रहती है चूंकि यह रोज़ ताज़ी मिल जाती है और अब तो विदेशी वैज्ञानिक भी दातौन के महत्त्व को स्वीकार करने लगे हैं।

दांतों की सफाई का महत्त्व दिन के बजाय रात को अधिक होता है। क्योंकि सो जाने पर हमारा मुंह बन्द हो जाता है, दांतों में शुद्ध हवा नहीं लग पाती, इसलिए वहां अटका हुआ भोजनांश बहुत जल्दी सड़कर ज़हरीला माद्दा पैदा कर देता है। अतः सोने से पूर्व दांतों में से भोजनांश साफ करके तथा नमक के पानी से अच्छी तरह मुंह साफ करके सोना चाहिए। दांतों की गन्दगी दूर करने के लिए नमक बहुत बढ़िया चीज़ है।

जिन व्यक्तियों के मसूढ़ों में चीस रहने लगी हो, मसूढ़ों से खून आता हो, उन्हें चाहिए कि रात को सोने से पहले दांतों का भोजनांश साफ करके नमक और हल्दी दांतों पर मलें (ये दोनों चीज़ें इतनी बारीक पिसी हुई होनी चाहिए कि मसूढ़ों को छीलें नहीं। दोनों चीज़ें बराबर मात्रा में लेनी चाहिए); और फिर बिना कुल्ला किए सो जाएं। कुछ दिन इस प्रयोग को अमल में लाने पर चीस और खून आना बन्द हो जाता है। लेकिन इसे फिर छोड़ नहीं देना चाहिए अपितु यह उपचार दिनचर्या में शामिल कर लेना चाहिए। बहुत-से लोगों का मवाद भी इस प्रयोग से बन्द हो जाता है।

इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य-नियमों का पालन तथा खान-पान-सम्बन्धी एहतियात बर्तना भी ज़रूरी है और इसके लिए दन्त-चिकित्सक से सलाह लेनी चाहिए।

कान का दर्द

कान में दर्द होना उसके कई भीतरी विकारों की सूचना देनेवाला लक्षण है। यह दर्द कान के बाहरी रास्ते में फुन्सी होने के कारण

भी हो सकता है तथा वहां मैल इकट्ठा हो जाने के फलस्वरूप भी हो जाता है। बच्चों में कई बार कान का दर्द कनफेड़ के आक्रमण अथवा टान्सिल फूलने का सूचक होता है। इसके अतिरिक्त दांत में कीड़ा लग जाने की दशा में अथवा 'अक्कल दाढ़' निकलने के समय भी कान में दर्द हो जाता है। उपर्युक्त कारणों से पैदा होनेवाले दर्द प्रायः साधारण स्थिति के होते हैं। लेकिन कान के मध्य मार्ग का दर्द एक गम्भीर रोग होता है।

साधारण स्थिति के दर्द कान के अन्दर महसूस होते हैं अथवा कान के नीचे या कान के सामने की ओर। मुंह चलाने पर ये दर्द बढ़े हुए महसूस होते हैं। इसके विपरीत कान के मध्य मार्ग का दर्द कान के पीछे सिर की ओर को महसूस होता है। ऐसी दशा में कान के ठीक पीछेवाली हड्डी को अगर उंगली से ठकठकाया जाए तो हड्डी में दर्द महसूस होता है। जब यह लक्षण मौजूद हो तो बिना एक मिनट की देर किए डाक्टर के पास पहुंचना चाहिए।

साधारण स्थिति के दर्दों में, जैतून या तिल का तेल अथवा ग्लिसरीन गर्म करके डालने से लाभ होता है। साथ ही गेहूं के बूर (चोकर) में थोड़ा नमक मिलाकर एक पोटली बना लेनी चाहिए और उससे कान पर सूखी सिकाई करनी चाहिए। बढ़े हुए दर्द में डाक्टर को दिखाना चाहिए।

दाढ़ का दर्द

दाढ़ या दांत का दर्द भी प्रायः सफाई न करने के कारण होता है। दांत कई पर्तों के बने हुए होते हैं और इनमें एक पर्त बहुत संवेदनशील होती है। अनेक कारणों से जब दांतों की पर्तों का क्षय होने लगता है और इस क्षय का क्रम उस संवेदनशील पर्त तक पहुंचता है तो वहां तेज दर्द शुरू हो जाता है (इस क्षय को हमारे यहां बोलचाल की भाषा में कीड़ा लगना कहा जाता है; लेकिन वस्तुतः वहां कोई जीवित कीड़ा नहीं होता)।

यदि दांत या दाढ़ खोखली हो तो साफ रुई की एक बारीक फुरेरी बनाकर लौंग के तेल में भिगोकर खोखले हिस्से में भर देनी

चाहिए। यह ध्यान रहे कि तेल का अंश गाल, जीभ या मसूढ़े पर न लगे अन्यथा वहां जलन पैदा हो जाएगी। फुरेरी भरकर उस हिस्से में थोड़ी और साफ रुई भर देनी चाहिए ताकि तेल का अंश बाहर न आए। यदि इस उपचार से लाभ न हो तो बाहर जबड़े पर गर्म और ठंडे पानी की गद्दी से सिकाई करनी चाहिए—अर्थात् एक बार गर्म पानी की गद्दी रखें और एक बार ठण्डे पानी की। दर्द शांत होने के बाद दन्त-चिकित्सक से अवश्य परामर्श करें।

बवासीर

बवासीर कोई कीटाणुओं से होनेवाला रोग नहीं है। यह खान-पान की बेएहतियाती और अनियमित जीवन से पैदा होता है। ज्यादा बैठने का काम करनेवाले लोग अक्सर इसके शिकार हो जाते हैं। बवासीर में गुदा के बाहर अथवा भीतर या दोनों स्थानों परमस्से पैदा हो जाते हैं। ये मस्से और कुछ नहीं होते, वहां की शिराएं ही फूलकर मोटी और सख्त पड़ जाती हैं। वैसे यह कोई खतरनाक बीमारी नहीं है। लेकिन ढीठ और परेशान करनेवाली जरूर है। मस्सों में जब दर्द, खुजली या खून निकलने का दौरा पड़ता है तब रोगी को बहुत कष्ट होता है। दौरे के अलावा समय में कोई कष्ट नहीं रहता।

बवासीर का स्थायी इलाज तो यही है कि आपरेशन द्वारा मस्सों को कटवाकर निकलवा दिया जाए। यह आपरेशन साधारण होता है। लगाने या खाने की दवाइयों से बवासीर की जड़ नहीं जाती। बवासीर के रोगी को कब्ज़ बहुत नुकसान देता है। जब सख्त मल मस्सों में से गुजरता है तो वे फट जाते हैं और खून निकलने लगता है। सच तो यह है कि अगर बवासीर के रोगी को कब्ज़ न हो तो फिर उसे तकलीफ होने का कोई सवाल ही नहीं उठता।[1]

मस्सों में दर्द, खुजली और सूजन होने की दशा में गर्म सिकाई से लाभ होता है। सिकाई कई उपकरणों द्वारा की जा सकती है: जैसे गर्म पानी की गद्दी से; हल्दी और भांग पीसकर टिकिया बनाकर और गर्म करके लगाने से भी सिकाई का उद्देश्य पूरा होता है। हल्दी

१. कब्ज़ दूर करने के लिए देखें: लेखक द्वारा लिखित 'योगासन और स्वास्थ्य'।

डालकर मोटे आटे का हलवा बनाकर बांधने से भी सेंक पहुंचता है। बवासीर के लिए बाजार में कई प्रकार के मरहम मिलते हैं जो ट्यूबों में बन्द होते हैं। उनके साथ एक नली गुदा में मरहम पहुंचाने के लिए होती है। सभी मरहम खुजली और दर्द में शान्ति पहुंचाते हैं। बवासीर के रोगी को बार-बार दस्तों की दवाइयां नहीं लेनी चाहिए; क्योंकि कई बार ये औषधियां मस्सों में उत्तेजना पैदा कर देती हैं। गर्म पानी का एनीमा लगाकर पेट साफ करना अधिक सुगम भी है और वैज्ञानिक भी।

महिलाओं के रोग

मासिक धर्म और उसके विकार

मासिक धर्म को माहवारी या ऋतुकाल के नाम से पुकारा जाता है। मासिक धर्म की प्रक्रिया में स्त्रियों की योनि से रक्तस्राव होता है। माहवारी का यह सिलसिला लड़कियों को १३-१४ साल की आयु से शुरू होता है और प्रायः ४५-५० साल की आयु तक चलता रहता है। गर्भकाल में माहवारी नहीं होती। माहवारी होना स्त्रियों में गर्भ-धारण की क्षमता का चिह्न होता है।

सामान्य रूप से माहवारी २८ दिन के अन्तर से होती है। लेकिन भिन्न-भिन्न महिलाओं में माहवारी का यह चक्र २१ से ३५ दिन तक का होता है जो उनके लिए स्वाभाविक होता है। प्रायः ऐसा भी देखा जाता है कि एक ही महिला को कभी २८ और कभी ३० दिन के अन्तर से मासिक धर्म होता है और यह भी अस्वाभाविक नहीं होता। सच तो यह है कि एक सुनिश्चित अन्तर से किसी भी महिला को माहवारी नहीं होती। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि यह अस्वाभाविकता स्वाभाविक ही होती है। किसी रोग के कारण, शारीरिक सदमे से अथवा मानसिक उद्वेग से माहवारी का क्रम बिगड़ सकता है। मासिक धर्म रुक जाना गर्भ-स्थिति का लक्षण होता है। लेकिन कई बार गर्भ-स्थिति के अलावा और भी कई कारणों से यह माहवारी रुक सकती है।

सामान्य रूप से मासिक रक्तस्राव की अवधि तीन से पांच दिन तक की होती है। लेकिन भिन्न-भिन्न महिलाओं में दो से सात दिन तक की भी पाई जाती है और यह स्वाभाविक होती है। इस अवधि में कुल एक से दो औंस तक खून निकलता है, जिसकी पूर्ति जल्दी ही हो जाती है।

धार्मिक भावनाओं ने इस मासिक धर्म की स्वाभाविक प्रक्रिया को एक अजीब रूप दे दिया है। दरअसल मासिक धर्म में अपवित्रता या गन्दगी का कोई प्रश्न नहीं आता; और न ही मासिक धर्म कोई बीमारी है। इस दर्म्यान अलग बैठने या बिस्तर पर आराम करने की कोई खास ज़रूरत नहीं होती। स्त्री को अपनी सामान्य दिनचर्या करनी चाहिए। यह बात बिलकुल गलत है कि इन दिनों स्त्रियों को स्नान नहीं करना चाहिए। इन दिनों सिर्फ इतना ही परहेज़ काफी होता है कि ज्यादा मेहनत-मशक्कत के काम न किए जाएं।

मासिक धर्म की इस प्रक्रिया में शरीर के कई अंग भाग लेते हैं। जैसे 'पिट्यूटरी' ग्रन्थि, गर्भाशय और डिम्ब-ग्रन्थियां। गर्भाशय के भीतरी भाग में मासिक चक्र के दौरान कई परिवर्तन भी होते रहते हैं।

संक्षेप में मासिक धर्म की प्रक्रिया का रहस्य यह है कि २८ दिन तक धीरे-धीरे गर्भाशय के अस्तर की झिल्ली में रक्त इकट्ठा होता रहता है और वह पिलपिली होती जाती है। गर्भाशय यह तैयारी आनेवाले उत्पादक डिम्ब के पालन-पोषण के लिए करता है। जब उत्पादक डिम्ब आ जाता है तो वह गर्भाशय की दीवार से चिपक जाता है और वहां के खून से परवरिश पाकर बढ़ने लगता है। इस हालत को गर्भ-स्थिति कहते हैं। फिर नौ मास के लिए मासिक धर्म बन्द हो जाता है। लेकिन जब डिम्ब उत्पादक नहीं होता तो वह गर्भाशय में नहीं रुकता। फलतः गर्भाशय का अस्तर एक हद तक फूलकर फट जाता है और उसमें जमा हुआ खून बाहर बहने लगता है, जिसे मासिक धर्म कहते हैं। और इसी तरह प्रतिमास गर्भाशय का यह रक्तसंचय-क्रम चलता रहता है।

विकार

कष्ट से माहवारी होना—नवयुवतियों में कष्ट से माहवारी होने की शिकायत सामान्य रूप से पाई जाती है। कई बार यह शिकायत मानसिक उलझनों और मानसिक असन्तोष के कारण होती है; और इस रहस्य को प्रायः रोगिणी भी नहीं समझ पाती। आराम की जिन्दगी और सुस्त दिनचर्या से भी यह शिकायत हो जाती है। लेकिन इसके शारीरिक कारण भी होते हैं, जैसे गर्भाशय पर किसी रोग के कीटाणुओं का स्थायी प्रभाव, अविकसित गर्भाशय, डिम्ब-ग्रन्थियों के विकार तथा गुप्तांगों की बनावट के कुछ दोष। स्वाभाविक रूप से होनेवाला मासिक धर्म कष्टदायक नहीं होता। ऐसी दशा में लेडी डाक्टर से परीक्षा कराके कारण मालूम करना चाहिए और उसकी चिकित्सा करानी चाहिए। स्वास्थ्य-नियमों का पालन और हलका व्यायाम इसमें लाभकारी है।

अरजस्कता—एक बार माहवारी शुरू होने के बाद (१३–१४ वर्ष की अवस्था से) फिर ४५–५० की अवस्था में ही जाकर समाप्त होती है। गर्भावस्था में तथा बच्चे को स्तनपान कराने के अलावा यदि माहवारी बन्द हो जाती है तो इसका कारण मालूम करना चाहिए। जननेन्द्रियों से सम्बन्धित कई रोगों से ऐसे लक्षण बन जाते हैं जिनका निराकरण जरूरी होता है। इसके अलावा शारीरिक दुर्बलता और लम्बी बीमारी में भी ऐसा हो सकता है। बहरहाल, डाक्टर से परीक्षा कराके कारण मालूम करना चाहिए क्योंकि कई बार ये लक्षण गम्भीर बीमारियों के पूर्वरूप होते हैं।

अतिरिक्त स्राव—महीने में दो बार मासिक स्राव होने अथवा बीच-बीच में धब्बे आते रहने को अतिरिक्त स्राव कहते हैं। यह लक्षण भी कई कारणों से पैदा होता है। बहुत बार इसका कारण भीतरी जननेन्द्रियों की सूजन होती है। गर्भाशय के अपनी जगह से हट जाने पर भी यह लक्षण बनता है। यदा-कदा गर्भाशय का कोई छोटा फोड़ा भी इसका कारण हो सकता है। इनके अतिरिक्त कई बार गुर्दे और जिगर के पुराने रोग भी अतिरिक्त स्राव पैदा कर देते हैं। बहरहाल,

डाक्टरी परीक्षा अत्यन्त आवश्यक होती है।

प्रदर

आजकल महिलाओं में प्रदर एक आम शिकायत है। लेकिन यह शिकायत कई रोगों के लक्षणस्वरूप पैदा होती है। प्रदर स्वयं कोई रोग नहीं है। अनेक व्यक्ति और यहां तक कि कई पुरानी पद्धति के वैद्य और हकीम भी इसे रोग मानते हैं। अनेक चिकित्साओं के बावजूद प्रदर रोग में आराम होता नहीं दिखाई देता क्योंकि उसके मूल कारण की चिकित्सा नहीं की जाती। प्रदर निम्नलिखित रोगों के लक्षणस्वरूप पैदा हो सकता है :

गर्भाशय, डिम्बग्रन्थियों, गर्भाशयमुख, योनिमार्ग की सूजन, गर्भाशय का अपने स्थान से हट जाना, भीतरी जननेन्द्रियों में फोड़ा-फुंसी या रसोली होना, मूत्राशय की सूजन। इन स्थानीय विकारों के अलावा कुछ दूसरी शरीरगत व्याधियों में भी प्रदर-स्राव होता है। सूजाक, आतशक तो स्थानीय विकारों के दायरे में आते ही हैं लेकिन एनीमिया, जिगर के रोग, गुर्दे के विकार, मधुमेह, अजीर्ण और कब्ज भी ऐसे कारण हैं जो प्रदर को जन्म देते हैं। इसके अलावा प्रायः गुप्तेन्द्रियों की गन्दगी से भी प्रदर हो जाता है। बहुत बार मानसिक क्लेश तथा उद्वेगपूर्ण मानसिक दशाओं में भी प्रदर-स्राव होने लगता है।

योनि से निकलनेवाले इस प्रदर-स्राव का रंग कभी सफेद, कभी भदमैला, कभी लाल और कभी पीला-सा होता है। स्राव कभी अल्प और कभी ज्यादा मात्रा में जाता है। यहां तक कि कभी-कभी रोगिणी के अधोवस्त्र पेटीकोट और अण्डरवीयर आदि भी भीग जाते हैं।

प्रदर-चिकित्सा के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण कदम उसका कारण तलाश करना है। इसके लिए लेडी डाक्टर से परीक्षा करानी चाहिए। अनेक बार स्वास्थ्य-नियमों की अवेहलना से कई अस्थायी जननेन्द्रिय-रोग पैदा हो जाते हैं। इसलिए अपनी दिनचर्या में खान-पान-सम्बन्धी सावधानी के अलावा हलका व्यायाम[1] जरूर शामिल करना चाहिए।

---

१. पढ़िए—लेखक द्वारा लिखित 'योगासन और स्वास्थ्य'।

स्नान तथा शारीरिक सफाई की तरफ पूरा ध्यान देना चाहिए। शोक, चिन्ता, ईर्ष्या आदि से दूर रहिए। इन दशाओं में प्रदर बहुत बढ़ जाता हैं। संक्षेप में, प्रसन्नचित्त रहना तथा स्वास्थ्य-सम्बन्धी सावधानियां रोग-निवारण में बहुत सहायक होती हैं।

गर्भावस्था के सामान्य रोग

अजीर्ण—गर्भ के दिनों में जी मिचलाने और उलटी हो जाने की शिकायत महिलाओं में इतनी आम होती है कि इसे गर्भावस्था का चिह्न माना जाने लगा है। गर्भिणी जैसे ही प्रातःकाल बिस्तर से उठती है उसका जी मिचलाना या उलटी होना शुरू हो जाता है। प्रायः यह शिकायत गर्भ-धारण के छः सप्ताह बाद शुरू होती है और छः सप्ताह तक ही रहती है। अपवाद रूप से कुछ महिलाओं में यह शिकायत बहुत लम्बे समय तक चलती रहती है।

साधारण रूप से जी मिचलाने या एकाध बार उलटी हो जाने की दशा में किसी खास इलाज की ज़रूरत नहीं होती। लेकिन ज्यादा बढ़ी हुई हालत में रोगिणी को सुबह बिस्तर से उठने के पहले ही कुछ खा लेना चाहिए। साथ ही शौच साफ होने की तरफ ध्यान रखना चाहिए। यदि दिन-भर उलटी होती रहे तो बिस्तर पर आराम करना चाहिए। भोजन तरल रूप में लेना चाहिए और बरफ चूसनी चाहिए। साथ ही योग्य डाक्टर का मशवरा लेना चाहिए।

कब्ज—कब्ज़ की शिकायत भी गर्भवती स्त्रियों में आम तौर पर पाई जाती है। वस्तुतः इस हालत में कब्ज़ की तरफ से लापरवाह नहीं रहना चाहिए वरना गर्भिणी और गर्भस्थ शिशु पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। क्योंकि बच्चे का मल भी इस अवस्था में माता के मल के साथ ही बाहर निकलता है। कब्ज़ की दशा में छाती की जलन और पेट का अफारा होने लगता है। हालांकि छाती की जलन का कारण अजीर्ण होता है लेकिन कब्ज़ इसको बढ़ा देता है।

इस हालत में दस्तावर दवाइयां लेना अच्छा नहीं होता, अपितु गर्भिणी का भोजन ही ऐसा होना चाहिए कि कब्ज़ दूर हो जाए। फल और हरी सब्ज़ियां ऐसी दशा में हितकारी होती हैं। इसके अतिरिक्त

कब्ज़ की हालत में मल नीचे की आंतों में सूख जाता है, इसलिए गर्भिणी को दिन में काफी पानी पीना चाहिए। रात को पानी पीकर सोना और प्रातःकाल उठते ही पानी पीना विशेष रूप से लाभ करता है।

मूर्च्छा—चौथे मास में जब बच्चा गर्भ में हरकत करने लगता है तो कभी-कभी किसी-किसी महिला को बेहोशी का सा दौरा पड़ जाता है; जो मुंह पर पानी के छींटे देने के साधारण उपचार से ही ठीक हो जाता है।

टांगों और पैरों की सूजन—यदि गर्भावस्था में टांगों और पैरों पर सूजन हो जाए तो फौरन ही डाक्टर का मशवरा लेना चाहिए; क्योंकि यह लक्षण गुर्दे अथवा ज़िगर की खराबी का होता है, जो आगे चलकर गम्भीर रूप धारण कर सकती है। सूजन की हालत में अगर टांगों को दबाया जाए तो वहां गढ़ा पड़ जाता है।

स्तनों में उत्तेजना—गर्भावस्था के प्रारम्भ से ही स्तनों में भारीपन आना शुरू हो जाता है। कभी-कभी चूचुकों में दर्द भी महसूस होता है। दूसरे महीने से स्तनों का बढ़ना साफ तौर पर दिखाई देने लगता है। स्तनों में दूध की गांठें उभरती हुई सी महसूस होती हैं।

इस हालत में किसी खास इलाज की ज़रूरत नहीं होती। स्तन-चूचुकों को रोज़ एक बार गर्म पानी से धो लेना चाहिए और दिन में किसी समय भी कुछ देर के लिए उन्हें खुली हवा में रखना चाहिए।

बार-बार पेशाब होना—गर्भकाल के प्रारम्भिक दिनों में यह शिकायत आम तौर पर हो जाती है। वस्तुतः गर्भाशय और मसाने पर भार पड़ने से ऐसा होता है। रोगिणी को ऐसी दशा में काफी पानी पीना चाहिए और चाय का सेवन बन्द कर देना चाहिए। यह शिकायत इन उपायों से जल्दी ही दूर हो जाती है।

गर्भकालीन एनीमिया—गर्भावस्था में चूंकि गर्भिणी को अपने शरीर के अतिरिक्त बच्चे का भी पोषण करना होता है और वह अधिक खाने में असमर्थ होती है; अतः इस समय शरीर में खून की कमी हो जाती है। इसे 'गर्भकालीन एनीमिया' कहते हैं। लेकिन एनीमिया की दशा को बढ़ने नहीं देना चाहिए। इसकी रोकथाम के

लिए डाक्टर से मशवरा करना चाहिए। प्रायः ऐसी अवस्था में कैलशियम, लोह और विटामिनयुक्त ओषधियों और इंजेक्शनों की व्यवस्था की जाती है, जोकि एक प्रकार से शरीर में खुराक की पूर्ति करते हैं। गर्भिणी को अपनी खुराक में दूध, दही, घी के अलावा फल और हरी सब्जियां जरूर शामिल करनी चाहिए। इनसे प्राकृतिक रूप में विटामिन तथा दूसरे जरूरी खाद्य-तत्त्व मिलते हैं।

बच्चों के सामान्य रोग

वस्तुतः बच्चों के लिए भी कुछ स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियम हैं। उनके पालन-पोषण के भी कुछ सिद्धान्त हैं, जिनके पालन से बच्चों की तन्दुरुस्ती सही रखी जा सकती है। लेकिन दुर्भाग्य से आम भारतीय माता-पिता इन नियमों से अनभिज्ञ हैं। इतना ही नहीं, इन मामलों में वे बहुत-सी भ्रम-धारणाओं के भी शिकार हैं। इन कारणों से बच्चे अनायास कई रोगों के शिकार हो जाते हैं। उदाहरण के तौर पर गोद का बच्चा जब तक दूध पीता है—उन दिनों हमारी माताएं बच्चे को किसी निश्चित क्रम से दूध नहीं पिलातीं। जैसे अभी उन्होंने बच्चे को दूध पिलाया है और यदि दस मिनट बाद ही बच्चा रोने लगता है, तो वे फिर उसके मुंह से स्तन लगा देती हैं। बच्चे का पहला दूध हजम हुआ नहीं था कि और दूध उसके पेट में डाल दिया गया, और दिन-भर में यह क्रम न मालूम कितनी बार दुहराया जाता है। यह असावधानी मूल रूप से बच्चे के लिए अजीर्ण का कारण बन जाती है और फलस्वरूप उसे कै और दस्त हो जाते हैं। दरअसल बच्चा सिर्फ दूध पीने के लिए ही नहीं रोता; उसके रोने के दूसरे कारण भी हो सकते हैं। अतः उन्हें जानने की कोशिश करनी चाहिए।

स्वास्थ्य के नियमों की दृष्टि से बच्चे को जन्म से ही पानी पिलाना चाहिए। लेकिन बहुत-से माता-पिता इस भ्रम-धारणा के शिकार हैं कि 'बच्चे को छः महीने तक पानी नहीं देना चाहिए।' अनेक बार हमारे पास ऐसे बच्चे आते हैं जिन्हें कई तकलीफें पानी न देने से पैदा होती हैं। गर्मी के दिनों में तो बच्चों को अतिरिक्त रूप से पानी पिलाना

चाहिए। दस्त होने की दशा में जब शरीर का काफी पानी निकल जाता है, तो खास तौर पर निकले हुए जल की पूर्ति के लिए बच्चों को पानी पिलाना जरूरी होता है। लेकिन ऐसी हालत में जब उन्हें पानी नहीं दिया जाता, तो प्रायः उनकी दशा गम्भीर हो जाती है।

जब तक बच्चे के पूरे दाढ़-दांत न निकल आएं, तब तक उसे रोटी, टोस्ट अथवा कोई ठोस फल या खाद्य, जो चबाकर खाया जाए, नहीं देना चाहिए। लेकिन हमारे घरों में जहां भी बच्चे के दो-चार दांत निकले कि हम मुहब्बत में आकर उसके मुंह में रोटी का टुकड़ा अथवा ठोस खाद्य दे ही देते हैं। दाढ़ों के अभाव में बच्चा उसे चबा तो पाता नहीं, साबुत ही निगल जाता है, जोकि उसके हाज़मे के लिए बेहद खराब साबित होता है। कै, दस्त, जिगर तथा पेट बढ़ने आदि की अनेक शिकायतें बच्चों को इसी गलती से पैदा हो जाती हैं।

लौह हमारे शरीर के लिए एक आवश्यक खाद्य-तत्त्व है। बच्चे के शरीर को भी लौह की भारी ज़रूरत रहती है। बच्चे के पास कुछ लौहतत्त्व पूंजी के रूप में होता है जो वह माता के गर्भ से लाता है, और उसकी यह पूंजी छः-सात महीने की अवस्था तक काम देती है। इस समय बच्चे की खुराक सिर्फ दूध ही होती है, लेकिन दूध में लौह नहीं होता; फलतः बच्चे के शरीर में लौह की कमी होने लगती है और उसे एनीमिया, जिगर बढ़ना तथा पाचन-सम्बन्धी दूसरी शिकायतें शुरू हो जाती हैं। दरअसल लौह की पूर्ति के लिए बच्चे को सन्तरा, मौसमी, अनार, अनन्नास, मालटा, गन्ना, आदि फलों के रस शुरू से ही मिलने चाहिए। लेकिन इस ओर आम माता-पिताओं का ध्यान नहीं होता। वे यह समझते हैं कि दूध के समान बच्चे के लिए दूसरी कोई खुराक हितकारी नहीं है। दूसरे, अज्ञानवश कुछ लोग यह समझते हैं कि फलों के रस बच्चे को ठण्ड पैदा कर देते हैं।

बच्चों को दूध पिलाने का सामान्य क्रम यह है कि चार मास तक के स्वस्थ बच्चों को तीन-तीन घण्टे के अन्तर से दूध पिलाना चाहिए। इस अवस्था से बड़े बच्चों को चार-चार घण्टे में।

बच्चा दरअसल एक बहुत कमजोर प्राणी होता है। उसके पास जीवनी शक्ति और रोग-प्रतिरोधक शक्ति दोनों ही कम मात्रा में

होती हैं ; फलतः उसे कोई भी रोग लग जाने का खतरा बराबर बना रहता है। इस खतरे को वस्तुतः एहतियात से ही कम किया जा सकता है ; जैसे बच्चे को सर्दियों में काफी खुली धूप और हवा में रखना तथा खास तौर पर स्वास्थ्य-सम्बन्धी सफाई का ध्यान रखना। बच्चों के काफी रोगों की चर्चा पिछले अध्यायों में की जा चुकी है। यहां बच्चों में होनेवाले कुछ सामान्य रोगों पर प्रकाश डालना है।

सर्दी-खांसी

बच्चों को बहुत जल्दी सर्दी लगकर जुकाम और खांसी हो जाते हैं। इस हालत में उनकी नाक खूब बहती है और सूखी किस्म की खांसी रहती है। यदि इस हालत में बच्चे की सार-संभाल नहीं की जाती, तो ठण्ड का असर फेफड़ों तक पहुंचकर ब्रांको-न्यूमोनिया हो जाता है। इस सर्दी की हालत में बच्चे को बुखार भी हो सकता है।

इस प्रकार की सर्दी की दशा में छः-सात मास तक के बच्चों को ¼ अंडे की जर्दी और ३० बूंद ब्राण्डी तीन-चार दिन तक रोज सुबह दे देनी चाहिए। खांसी के लिए साफ अलसी लेकर तवे पर सूखी भून लें और उसे पीसकर शीशी में भरकर रख लें। एक-दो चने के बराबर अलसी शहद में मिलाकर दिन में दो-तीन बार चटा देनी चाहिए। इन उपायों से बहुत हद तक सर्दी से बच्चे की रक्षा हो जाती है। रोग अधिक बढ़ने पर डाक्टर को दिखाना चाहिए।

ब्रांको-न्यूमोनिया

जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है सर्दी का असर बढ़कर फेफड़ों की श्वास-नलिकाओं में पहुंचने पर ब्रांको-न्यूमोनिया हो जाता है। इस न्यूमोनिया की दशा में बच्चे का श्वास बहुत तेजी से चलता है। नाक के नथुने जल्दी फूलते हैं। बुखार काफी तेज रहता है। सूखी खांसी कभी कम और कभी ज्यादा उठती है। बच्चों के इस न्यूमोनिया को हब्बा-डब्बा, पसली चलना, धोरसा आदि कई आंचलिक नामों से पुकारा जाता है। वस्तुतः बच्चों में होनेवाला यह आम रोग है जो प्रायः दो वर्ष तक के बच्चों को ज्यादा होता है। न्यूमोनिया की दशा

में वस्तुतः बच्चे को जल्दी-जल्दी सांस लेने में बड़ा परिश्रम पड़ता है।

एण्टी-बायटिक ओषधियों और सल्फा-ड्रग्स ने आज ब्रांको-न्यूमोनिया के इलाज को बहुत सरल बना दिया है। अन्यथा इन ओषधियों के आविष्कार से पूर्व प्रायः आधे बच्चे इस न्यूमोनिया में मर जाते थे। लेकिन अब एण्टी-बायटिक्स के एक-दो इन्जेक्शनों के बाद ही रोग काबू में आ जाता है। पहले न्यूमोनिया भोगनेवाला बच्चा हफ्तों तक तकलीफ पाता था। न्यूमोनिया का शुबहा होते ही बच्चे को डाक्टर को दिखाना चाहिए। सर्दी से बचाने के लिए बच्चे को काफी गर्म कपड़े, जूते और मोज़े पहनाकर रखना चाहिए। ठण्ड ज़्यादातर पैरों की ओर से असर करती है।

क्रूप

यह भी खांसी की बिरादरी का ही एक रोग है जोकि प्रायः दो-तीन वर्ष तक की उम्र के बच्चों को होता है। प्रायः इस रोग का आक्रमण रात को होता है। बच्चा सोता-सोता जाग जाता है, उसे खांसी उठती है, खांसी की आवाज़ कुछ-कुछ बांसुरी बजने जैसी होती है। हालांकि बच्चे को खांसने में कोई तकलीफ नहीं होती, लेकिन खांसते-खांसते जब वह भीतर को सांस लेता है, तो उसे बहुत तकलीफ होती है और वह मुश्किल से सांस खींच पाता है। उसे वस्तुतः सांस खींचने में मेहनत पड़ती है और कष्ट होता है। खांसी उसे कुछ-कुछ समय रुककर दौरों के रूप में उठती है। इस हालत में दरअसल बच्चे के स्वर-यन्त्र में ऐंठनी होती है। इसी कारण बांसुरी की सी आवाज़ निकलती है और श्वास लेते समय कष्ट होता है। लेकिन खांसी उठने के अलावा समय में वह ठीक सांस लेता है। क्रूप की हालत में बुखार नहीं होता। डिप्थीरिया भी गले और स्वर-यन्त्र की ही बीमारी होती है, लेकिन उसमें बुखार होता है और बच्चा कष्ट से श्वास लेता है।

क्रूप प्रायः गले और छाती में ठण्ड का असर बैठ जाने से होता है। हालांकि यह कोई खतरनाक बीमारी नहीं है, लेकिन बच्चे को कष्टदायक अवश्य होती है। रात्रि के समय रोग का आक्रमण होने पर बच्चे के गले पर बाहर से तेल मलकर सेंकना चाहिए। सिकाई से

स्वर-यन्त्र की ऐंठनी कम होती है। गरम और चिकनी चीज जैसे हलुआ भी बच्चों को उस समय दिया जा सकता है। प्रातःकाल बच्चे को जरूर डाक्टर को दिखाना चाहिए, क्योंकि हो सकता है कि आप डिप्थीरिया और क्रूप को पहचानने में गलती कर जाएं और डिप्थीरिया एक घातक रोग होता है।

कमेड़े

उस दशा को कहते हैं जबकि बच्चों को एक दौरा-सा पड़कर उनके हाथ-पैर ऐंठ जाते हैं, आंखों की पुतलियां ऊपर को घूम जाती हैं, जबड़ा बन्द हो जाता है। ऐंठनी में बच्चा इधर-उधर को भी घूमता है, और कभी-कभी चेहरे की पेशियों में ऐंठनी आने से चेहरा विकृत हो जाता है। किसी-किसी बालक को पसीना भी आ जाता है। हालांकि कमेड़े के दौरे में बच्चे की हालत बहुत डरावनी बन जाती है, लेकिन प्रायः बच्चे को कोई खतरा नहीं होता है, चन्द मिनटों में दौरा स्वयं ही खुल जाता है और फिर बच्चा सो जाता है।

बच्चों को कमेड़े अनेक कारणों से हो सकते हैं, जैसे अजीर्ण, कब्ज, पेट में चुरने (कीड़े) पैदा हो जाना। कभी-कभी जन्म के समय बच्चे के दिमाग को चोट पहुंचने की वजह से भी कमेड़े आने लगते हैं। कुछ बड़े बच्चों में कभी-कभी मानसिक उद्वेग से भी कमेड़े हो जाते हैं। कभी-कभी कमेड़े मिरगी का पूर्वरूप होते हैं। यह सम्भव हो सकता है कि रोगी बच्चे को आगे चलकर मिरगी के दौरे पड़ने लगें। इसके अतिरिक्त बच्चों की खुराक में कैलशियम और विटामिन 'डी' की कमी भी कमेड़ों के लिए उत्तरदायी होती है। अतः बच्चे को डाक्टर को दिखाना चाहिए।

कब्ज

बच्चों में कब्ज हमेशा खान-पान की गड़बड़ी से होता है। कुछ बच्चे ऐसे जरूर मिलते हैं जो दूसरे या तीसरे दिन ही टट्टी करते हैं और यह बात उनके लिए स्वाभाविक होती है। बच्चों में कब्ज पैदा हो जाने के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं :

● जबकि बच्चों को पिलाया जानेवाला दूध भारी होता है—भारी दूध का अर्थ है दूध में प्रोटीन की मात्रा ज़्यादा होना। प्रायः जब माताओं को दूध कम उतरने लगता है और वे बच्चों को ऊपर का दूध पिलाना शुरू करती हैं, तब यह बात होती है। गाय के दूध में माता के दूध से ज़्यादा प्रोटीन होते हैं और भैंस के दूध में प्रोटीन की मात्रा गाय के दूध से भी ज़्यादा होती है। अतः गाय के दूध में आधा पानी मिलाकर और भैंस के दूध में ¾ पानी मिलाकर ऊपर के दूध की शुरुआत करनी चाहिए। फिर धीरे-धीरे पानी की मात्रा कम करते जाएं। यदि दूध में चीनी या घी ज़्यादा होता है तो बच्चे को दस्त हो जाते हैं। दरअसल बच्चों के लिए बकरी का दूध उत्तम रहता है, क्योंकि प्रायः यह माता के दूध के बहुत समीप होता है।

● कई बार कुछ बच्चे जिन्हें अधिक दूध पिलाया जाता है, फूलकर मोटे तो हो जाते हैं, लेकिन वास्तव में एनीमिया के शिकार होते हैं। ऐसे बच्चों की आंतें कमज़ोरी के कारण मल बाहर नहीं फेंक पातीं और उन्हें कब्ज़ हो जाता है।

● दूध के अतिरिक्त बच्चों को काफी पानी भी पिलाना चाहिए। और गर्मियों में तो उन्हें पानी की भारी ज़रूरत रहती है, क्योंकि पसीने के रास्ते शरीर का काफी पानी बाहर निकल जाता है। जिन बच्चों को कम पानी पिलाया जाता है या बिलकुल पानी नहीं दिया जाता, उन्हें आम तौर पर कब्ज़ हो जाता है।

जहां तक कब्ज़ दूर करने का प्रश्न है कब्ज़ का कारण तलाश करके उसे दूर करना ही कब्ज़ का सबसे अच्छा इलाज है। दवाइयों के ज़रिये बच्चों को टट्टी कराने का तरीका अच्छा नहीं होता। यदि बच्चे को दूध के साथ ही कुछ फलों के रस मिलते रहें, तो कब्ज़ पैदा होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। प्रायः गरीब आदमियों के बच्चों को जब पूरी खुराक नहीं मिल पाती, तब भी उन्हें कब्ज़ हो जाता है। लेकिन ऐसी दशा में बच्चा दुर्बल भी होता है। गरीब माता-पिता यदि बच्चे के दूध का खर्च बरदाश्त करने में असमर्थ हों, तो उन्हें बच्चे को मक्खन निकला दूध (सैपरेटा) पिलाना चाहिए। यह बहुत सस्ता पड़ता है और घी के अलावा सैपरेटा में बाकी सब पोषक तत्त्व

मौजूद रहते हैं। कास्ट्रैल या घुट्टी देकर बच्चों को टट्टी कराने की आदत नहीं डालनी चाहिए। यदि मजबूरी ही आ पड़े, तो ग्लिसरीन की बत्ती लगा देनी चाहिए अथवा डाक्टर के पास ले जाकर ग्लिसरीन की पिचकारी चढ़वाकर टट्टी करा देनी चाहिए और फिर खान-पान के मूल कारणों की ओर ध्यान देना चाहिए।

बच्चों में अतिसार (दस्त)

दस्त हो जाना बच्चों की एक बहुत आम शिकायत होती है। और कभी-कभी यह बच्चों के लिए घातक भी साबित होती है। सामान्य रूप से अतिसार बच्चों में गर्मियों के मौसम में होता है और खास तौर पर उन बच्चों में जिन्हें ऊपर का दूध पिलाया जाता है। ऊपरी दूध के ज़रिये कुछ रोग-कीटाणु उनकी आंतों में पहुंचकर दस्त पैदा कर देते हैं। दरअसल कीटाणु गर्मी के मौसम में ही ज्यादा पनपते हैं। दूसरे, खान-पान की बेएहतियाती से भी अतिसार होता है, जैसे दूध ज्यादा पिला देना, बिना दांत निकले बच्चों को कोई ठोस चीज़ खिला देना; दांत निकलने के कारण से भी बच्चों को अतिसार की शिकायत पैदा हो जाती है। अपच के कारण पैदा होनेवाले दस्तों में कै भी होने लगती है। कई दिन तक लगातार दस्त चलते रहने के बाद प्रायः अतिसार पेचिश में बदल जाता है और बच्चे को आंव आने लगती है, टट्टी करते समय पेट मे ऐंठनी होती है। ऐसी हालत में बच्चा बहुत जल्दी-जल्दी टट्टी करता है और ऐंठनी के कारण बराबर रोता रहता है।

बच्चों का दिन में तीन, चार या पांच बार टट्टी करना स्वाभाविक होता है। स्वस्थ अवस्था की टट्टी में बदबू नहीं होती और उसका स्वाभाविक रंग पीला होता है।

बहरहाल, बच्चों के दस्तों की कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि दस्तों से बच्चे जल्दी ही कमजोर हो जाते हैं और फिर रोग जिगर की ओर बढ़कर जिगर खराब कर देता है, जिससे एनीमिया हो जाता है। बच्चे में कमजोरी बढ़ जाने पर अन्य रोग भी उनके शरीर पर हमला कर देते हैं। आजकल बच्चों के अतिसार की काफी सफल ओषधियां निकल आई हैं। अतः शुरू में ही बच्चे को

डाक्टर को दिखाना चाहिए। गर्मी के दस्तों की हालत में दोपहर के समय बच्चे के पेट पर दो-तीन घण्टे के लिए ठण्डे पानी की गद्दी रख देनी चाहिए। यह प्रयोग बच्चों के लिए बहुत फायदेमन्द होता है। कै और बुखार होने की दशा में भी इससे लाभ होता है।

अफारा

खान-पान की गडबड़ी और अजीर्ण के कारण बहुत बार बच्चों का पेट अफ़र जाता है। अफारे का अर्थ है—पेट में हवा रुक जाना। कई बार यह हवा पेट में होती है और कई बार नीचे की आंतों में। दोनों हालतों में पेट फूला हुआ नज़र आता है। जब हवा पेट में होती है, तो हिचकी या कै भी साथ-साथ होने लगती है। बहर-हाल, अफारे की हालत में बच्चे के पेट में दर्द होता है, जिसके कारण बच्चा लगातार एक-एक घण्टे तक रोता रहता है। कई बार अफारे का कारण कब्ज़ भी होता है। आंतों में मल सूखने से पेट में गैस पैदा होती है और उसे बाहर निकलने को रास्ता नहीं मिलता। ऐसी हालत में बच्चे को ग्लिसरीन या साबुन की बत्ती लगाकर टट्टी करा देनी चाहिए। प्रायः टट्टी के साथ हवा खारिज होकर दर्द जाता रहता है। इसके अलावा बच्चे को जब अफारा हो, तो उसे कभी इस करवट और कभी दूसरी करवट लिटाना चाहिए। कभी थोड़ी देर के लिए बिठा देना चाहिए, कभी उलटा लिटा देना चाहिए। इन हरकतों से आंतों में गति पैदा होकर हवा निकल जाती है। इसके अलावा पेट पर गर्म सिकाई भी लाभ देती है। यदि घर में सोडा-बाई-कार्ब हो तो एक चने बराबर सोडा एक चम्मच गर्म पानी में घोलकर देना उचित रहता है। एक चने बराबर भुना हुआ सुहागा भी गर्म पानी के साथ दिया जा सकता है। इसके अलावा हथेली से पेट को सहलाने से भी वायु खारिज हो जाती है।

रात को चौंकना

प्रायः कुछ बड़े बच्चों में रात को सोते-सोते चौंक पड़ने अथवा डर जाने की आदत पाई जाती है। जिन बच्चों को यह शिकायत होती

है, वे रात को अचानक उठ बैठते हैं और बेसाख्ता चीखने और रोने लगते हैं। वस्तुतः उस समय वे कुछ अर्धनिद्रा की हालत में होते हैं। उन्हें प्रायः यह पता नहीं रहता कि उनके आसपास क्या हो रहा है; कई बार तो वे घरवालों को पहचान भी नहीं पाते हैं। उन्हें ऐसा महसूस होता है कि कोई खूंखार जानवर या कोई भयानक व्यक्ति उन-पर हमला करने आ रहा है। उनकी यह स्थिति प्रायः कुछ सेकण्ड तक ही रहती है; लेकिन कभी-कभी वे अधिक समय तक घबराए रहते हैं। कई बच्चों को चौंकने के बाद हिस्टीरिया के किस्म का दौरा पड़ जाता है अथवा कमेड़े आ जाते हैं।

चौंकनेवाले बच्चों के सम्बन्ध में प्रायः लोगों में—विशेष रूप से अशिक्षित लोगों और स्त्रियों में—यह धारणा घर कर जाती है कि बच्चे को कोई प्रेत-बाधा हो गई है और उसके झाड़-फूंक के इलाज और टोने-टोटके चलते रहते हैं। लेकिन वस्तुतः यह बात शारीरिक कारणों से पैदा होती है। ऐसी हालत में अवश्य ही बच्चे को डाक्टर को दिखाना चाहिए। चौंकने के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं:

- नाक में 'एडनाइड्स' अथवा गले में टान्सिलों का बढ़ जाना, जिससे सोते समय श्वास लेने में बाधा पड़ती है।
- कब्ज तथा पेट की खराबी, जिसके कारण गन्दी गैसें दिमाग में टकराती हैं। इस हालत में एनीमा लगाकर बच्चे का पेट साफ कर देना चाहिए।
- बिस्तर पर पेशाब करने से बिस्तर का ठण्डा और गीलापन।
- कोई भी ऐसा कारण जो बच्चे पर स्नायविक बोझ पैदा करता हो, जैसे स्कूल की पढ़ाई में अतिरिक्त परिश्रम।

इसके अतिरिक्त कुछ मानसिक कारण भी होते हैं, जैसे जिन बच्चों को शुरू से ही हौआ, सिपाही, भूत आदि की बातें कहकर डरा दिया जाता है, आगे चलकर उनके मन में बैठा हुआ भय चौंकने का रूप ले लेता है।

दूध डालना (कै करना)

कै करने के लक्षणों के सम्बन्ध में पीछे काफी प्रकाश डाला जा

चुका है। कब्ज़, अजीर्ण, तेज़ बुखार की हालत में बच्चों को कै होने लगती है। कीटाणुओं द्वारा दूषित खान-पान भी इसका कारण होता है। लेकिन कई बार बच्चों में लगातार कै होने लगती है। पानी, दूध, फलों का रस अथवा जो कोई भी चीज़ उनके मुंह में डाली जाती है, फौरन बाहर आ जाती है। यह बात बच्चे के पेट में एक प्रकार की खटास पैदा हो जाने से होती है। उसकी कै में से भी एक प्रकार की खट्टी बदबू-सी आती है। दूध में चिकनाई अधिक और मीठा कम होने की वजह से भी यह खटास पैदा हो जाती है। चिड़चिड़े स्वभाव के बच्चों में मानसिक-उद्वेग के कारण भी यह शिकायत होने लगती है।

इसका इलाज प्रायः सरल होता है। निम्नलिखित दो-तीन बातों का ध्यान रखने से यह शिकायत दूर हो जाती हैं :

- थोड़ा-थोड़ा सोड़ा-बाईकार्ब ठण्डे पानी में घोलकर बच्चे को पिलाना चाहिए। यदि एकाध बार इसकी भी कै हो जाए, तो दोबारा देना चाहिए।
- कुछ समय सिर्फ ग्लूकोज़ या मिश्री मिला पानी ही पिलाना चाहिए। जब यह हज़म होने लगे, तो दूध या फलों का रस दें।
- मानसिक उद्वेग की हालत में स्थान-परिवर्तन या बच्चे की दिनचर्या में थोड़ा परिवर्तन कर देने पर ही लाभ हो जाता है।
- दूध में चिकनाई की मात्रा कम करके मिश्री अधिक मात्रा में घोलकर देनी चाहिए।

कुछ उपयोगी ओषधियां

निम्नलिखित ओषधियों का एक बक्स बना लेना चाहिए। घर-गृहस्थी में समय-असमय में ये उपयोगी साबित होती हैं।

(१) सितोपलादि चूर्ण—खांसी, जुकाम, नज़ले में दो-दो माशे चूर्ण दिन में दो-तीन बार शहद में मिलाकर चाटना चाहिए। साधारण गले की खराबी से उत्पन्न जुकाम और खांसी इससे दूर हो जाते हैं। यह चूर्ण बाजार में बना-बनाया भी मिल जाता है। घर पर तैयार करने के लिए आगे लिखा नुस्खा देखिए :

[दालचीनी १ भाग ; छोटी इलायची के दाने २ भाग ; छोटी पीपल ४ भाग ; वंशलोचन ८ भाग ; मिश्री १६ भाग। इन सब चीजों को कूटकर कपड़छन करके शीशी में भर लें।]

(२) लवणभास्कर चूर्ण—गर्मी के मौसम में अतिसार (पतले दस्त) हो जाने पर ६ माशे से १ तोले तक चूर्ण दही में मिलाकर दिन में दो-तीन बार खाने से लाभ होता है। साधारण अजीर्ण में ६ माशे चूर्ण ताजे पानी के साथ खाना चाहिए।

(३) सोडा-बाईकार्ब—यह अंग्रेजी दवाफरोशों के यहां से लेना चाहिए। बदहजमी, छाती की जलन, कै में पित्त आने पर, पेट में अफारा आने पर तथा साधारण पेट के दर्द में १ माशे की मात्रा से दिन में दो-चार बार जल के साथ लेना चाहिए।

(४) सोडा-साइट्रास—यह ओषधि भी अंग्रेजी दवाफरोशों के यहां मिलती है। बच्चों के दूध उलटने की दशा में काफी उपयोगी है। जब बच्चा हर बार दूध उलट देता हो, तो २ रत्ती के करीब सोडा-साइट्रास दूध पिलाने के पहले पानी में घोलकर पिला देना चाहिए। दिन-भर में तीन-चार मात्रा दी जा सकती हैं।

(५) ब्राण्डी—यह हमेशा अच्छी कम्पनी की लेनी चाहिए। जाड़ों के दिनों में बच्चों को सर्दी लग जाने पर; खांसी, जुकाम तथा पसली चलने की दशा में गोद के बच्चों को दस-दस बूंद गर्म पानी या दूध में मिलाकर दिन में दो-तीन बार दी जा सकती है। बड़े बच्चों को एक चाय के चम्मच की मात्रा से दें।

(६) बाल-पाचकचूर्ण—छः वर्ष तक के बच्चों के लिए इसका प्रयोग उपयोगी रहता है। कब्ज, पेट का दर्द, अफारा, अजीर्ण तथा हरे-पीले दस्तों में बच्चे की उम्र के अनुसार ४ रत्ती से १ माशे तक गर्म पानी के साथ दिन में तीन-चार बार दिया जा सकता है। इसका नुस्खा निम्न है :

[भुना सुहागा १ भाग ; सोडा-बाईकार्ब १ भाग ; देसी नौसादर ½ भाग ; काला नमक ½ भाग। सबको एक जगह मिलाकर शीशी में भर लें।]

(७) अमृतधारा या सुधासिंधु—गर्मी के कारण जी मिचलाने या

के होने, लारी के चक्करदार रास्ते में जी मिचलाने, चक्कर आने की दशा में इसकी दो-चार बूंद पानी में डालकर पीने से साधारणतया लाभ हो जाता है। दाढ़ के दर्द में भी इसकी फुरेरी लगाने से बहुत बार लाभ होता है। पेनबाम के अभाव में इसकी कुछ बूंदें ज़रा-सी वैसलीन में मिलाकर लगाने से लाभ करता है। यह ओषधि बहुत छोटे बच्चों के लिए बहुत तेज़ रहती है, इसलिए उन्हें नहीं देनी चाहिए। नुस्खा नीचे देखें :

[पीपरमैंण्ट, सत अजवायन और देशी कपूर—तीनों समान भाग लेकर एक शीशी में भर दें। जब तीनों मिलकर पानी बन जाएं तो इस्तेमाल करें।]

(८) पेनबाम—बाज़ार से किसी अच्छी क्वालिटी का पेनबाम लेकर आप अपने दवाओं के बक्स में रखें। सिरदर्द की दशा में एस्प्रिन की पुड़िया या गोली खाने के बजाय पेनबाम मलना ज्यादा अच्छा रहता है। शरीर के किसी छोटे-मोटे भाग में वायु-पीड़ा होने पर भी इसे मला जा सकता है।

(९) तारपीन का लिलीमैंण्ट—तारपीन के तेल पर कई अन्य ओषधियां मिलाकर बनाया हुआ यह सफेद गाढ़ा तेल होता है। सर्दी के कारण बच्चों की पसली चलना, न्यूमोनिया, सर्दी के कारण छाती का दर्द आदि दशाओं में इसकी मालिश करके सिकाई करनी चाहिए। जोड़ों की वायु-पीड़ा में भी बहुत बार इसकी मालिश से लाभ होता है।

(१०) टिंचर आयोडीन—हालांकि यह एक सामान्य ओषधि है, लेकिन बहुत तेज होती है। इसे आंख या नाक के पास नहीं लगाना चाहिए। फ़ोड़े की सूजन, गिल्टियों का फूलना, चोट के कारण किसी स्थान पर सूजन होने की दशा में इसका लेप लाभ करता है। खुले ज़ख्मों पर यह बहुत जलन पैदा करता है, अतः नहीं लगाना चाहिए।

० ० ०